जिन्दगी के थपेड़े

विष्णु प्रभाकर

१९५२ } { तीन रुपया

प्रकाशक :

आलोक प्रकाशन

बीकानेर

मूल्य ३)

मुद्रक :

भारतीय मुद्रण मन्दिर

बीकानेर

विष्णु

सूची

बन्धुवर चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

को

१९३४ के एक पत्र

की

याद में

जिन्दगी के थपेड़े

'जिन्दगी के थपेड़े' ऊपर से ऐसा दिखाई देने पर भी निश्चय ही कहानियों का संग्रह नहीं है, बल्कि १७ भागों में एक बड़ी कहानी है, एक व्यक्ति की कहानी। निशिकान्त उस व्यक्ति का नाम है पर वह निशिकान्त व्यक्तिवाचक होकर भी कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं है। वह एक पूरे समाज का प्रतिनिधि है। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध का वह एक साधारण मानव है। उसकी विशेषता यही है कि वह युग की प्रवृत्तियों के प्रति जागरूक है और उनसे जूझने को उत्सुक।

ये कहानियाँ जान-बूझ कर किसी क्रम से या किसी उद्देश्य से नहीं लिखी गईं, पर फिर भी इनका एक क्रम है। यद्यपि उस क्रम की कुछ कहानियों में कथा के समय और लिखने के समय में अन्तर है। दूसरी (जीवन:एक कहानी) और छठी (अपरिचित) कहानियाँ अपेक्षाकृत पुरानी हैं तथा तीसरी (कहानी लेखक) चौथी (अन्तर्वेदना) और पाँचवीं (रहस्य) बहुत बाद में लिखी गई हैं। यदि लेखक भूलता नहीं तो लेखन क्रम से इस संग्रह की सबसे पहली कहानी सन् १९३८ तथा सबसे अन्तिम कहानी सन् १९४७ में लिखी गई पर कथा-क्रम की दृष्टि से ये सन् १९३५–३६ से लेकर १९४५–४६ तक के भारत की कहानियां हैं। उस समय की अनेक प्रसिद्ध घटनाओं की झलक इनमें है। 'परिवर्तन' और 'वह रास्ता' हिन्दू–मुस्लिम समस्या पर प्रकाश डालती हैं। 'मुक्ति' बंगाल के अकाल का परिचय देती है। 'निशिकान्त का स्वप्न' द्वितीय महायुद्ध से सम्बन्ध रखती है। 'पण्डितजी' और 'क्रान्तिकारी' पर तत्कालीन राजनीतिक वातावरण की छाया है। लेखक का यह दावा नहीं है कि उसका दृष्टिकोण समूचे देश का दृष्टिकोण है, पर फिर भी इतना दावा वह जरूर करता है कि घटनाओं के प्रति पूरी ईमानदारी बरती गई है।

शेष कहानियों में कुछ सामाजिक और व्यक्तिगत समस्यायें हैं। 'जीवन:एक कहानी' में एक वर्ग की आर्थिक दुर्दशा, 'अन्तर्वेदना' में नारी और विवाह, 'यह क्रम' में बाल और अपराध मनोविज्ञान, तथा 'दफ़्तर' और 'अरुणोदय' में सरकारी दफ़्तरों
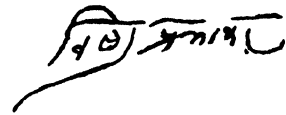
की राजनीति के जो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं वे हमें सोचने को विवश करते हैं। कहानी–लेखक, रहस्य, अपरिचित, छाती के भीतर, निशिकान्त और कितना झूठ, में केवल व्यक्ति विशेष की समस्यायें हों सो बात भी नहीं है। ये मानव-चरित्र की कहानियाँ हैं; एक विशेष समाज में निर्मित हुये मानव-चरित्र की। यद्यपि ऊपर से देखने पर वह समाज ह्रास की ओर जा रहा है, परन्तु उसका प्रभाव अभी देर तक रहने वाला है।

यह तो हुई सामाजिक-पहलू की बात, पर वही सब कुछ नहीं है। लेखक को विश्वास है कि इसके अलावा भी ये कहानियाँ पढ़ी जाने वाली हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है ये केवल कहानियाँ नहीं हैं, एक व्यक्ति का अध्ययन है और उसके द्वारा एक विशेष समाज और एक विशेष युग का अध्ययन ! इस अध्ययन में कहानी की संक्षिप्तता, उपन्यास का विकास-क्रम, और इतिहास की ईमानदारी है। प्रत्येक कहानी अपने में पूर्ण है और समूची पुस्तक का कथा-सूत्र सम्बद्ध है। बिना किसी योजना के लिखी गई 'जिन्दगी के थपेड़े' की कहानी सम्पूर्ण जीवन की न सही, जीवन के एक भाग की सम्पूर्ण कहानी है।

लेखक को इतना ही कहना है, शेष पाठक पढ़े और जाने।

नववर्षारम्भ
चैत्र शुक्ल १, २००६
दिल्ली

२६–३–५२

दफ्तर में

●

अभी उस दिन कान्त के नथने फड़कने लगे थे और परचा लिखता-लिखता वह थर-थर कांप उठा था, लेकिन आज जैसे उसे हँसी आगई। अपने साथी से बोला "कितनी बेवक़ूफ़ी की बातें हैं!"

साथी गेंहुये रंग का लम्बा सा नवयुवक था। वह नया भरती हुआ था। इसी बात पर उसने एक दिन कहा था—मेरा जी कहता है उसके गले पर अँगूठा रखकर ज़ोर से दबा दूँ!

आज भी उसने यही कहा।

यह ठीक है, लेकिन तुम इसके परिणाम के लिये तैयार हो?

परिणाम की मुझे चिन्ता नहीं है। मेरे बदन में आग लगी हुई है छोटे बाबू हमारी तरफ़ किरानी है। क्या हुआ उसका वेतन कुछ अधिक है। उसे आदमी को झिड़कने का अधिकार नहीं है। यह सरकारी काम है!

वह आगे कुछ कहता कि बड़े बाबू हाँफते-हाँफते वहाँ आगये। बोले-"आज की डाक से यह केस जाना है। जल्दी तैयार कर दो।"

लाल फ़ीते में बंधे हुये बहुत से कागज़ लेकर निशिकान्त का साथी अपनी सीट पर चला गया। बड़े बाबू कान्त से बोले—"तुम ज़रा छोटे बाबू के पास चले जाओ। मुझे प्राइवेट लिफ़ाफ़ों की ज़रूरत है।"

तब कान्त ने अपने सामने बड़े बड़े रजिस्टरों को समेटते हुये जवाब दिया..."जी, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि वह आदमी से कुत्ते की तरह बोलता है!"

"कुत्ते की तरह!"—अचकचा कर बड़े बाबू बोले।

"जी हाँ! जब से उसके पैसे बढ़े हैं, वह आदमी को आदमी नहीं

समझता। गाली देता है। ऐसे कमीने आदमी से हम कोई वास्ता नहीं रखना चाहते !"

"उसे ऐसा नहीं चाहिये।"—बड़े बाबू ने कहा।

"बेशक चाहिये तो नहीं, परन्तु मेरा विश्वास है जब तक उसके गाल पर तमाचा नहीं लगता वह ऐसा ही चाहता रहेगा।"—कान्त कहते कहते क्रोध से भर उठा। उसकी मुट्ठी मिच गई। आँखें लाल हो आईं।

बड़े बाबू ने अचरज से उसे देखा और कहा—"मैं समझा दूँगा; अच्छा।"

× × ×

दफ़्तर में घुसते ही बाँयी ओर के कमरे में बैठे हुये छोटे बाबू को कोई नहीं भूल सकता। वह नाटा आदमी है। उसका रंग साँवला है। उसका शरीर सुडौल है और हरएक पोशाक उस पर फबती है। कोट पैन्ट या पाजामा अथवा सिलवार कुछ भी वह पहिन ले उसे बुरी नहीं लगती। वह अपनी सीट पर बैठ कर जब सिगरेट का लम्बा कश खींचता है तो पीड़ा उसकी आँखों से झलक पड़ती है। उसके पतले मुख पर उस्तरे की रगड़ से ज़रूरत से ज्यादा कालापन उभर आया है और हर वक्त की झुँझलाहट के कारण वह बड़ा चिड़-चिड़ा हो गया है। कभी-कभी लम्बे और टेढ़े केसों पर विद्वता-पूर्ण टिप्पणी करते करते उसकी छोटी आँखें चमक उठती हैं। वह बहुत चतुर और चलता किरानी है, पर दफ़्तर के दूसरे बाबुओं को उसकी विद्वत्ता पर ज़रा भी गर्व नहीं है। यही बात उसे खटकती है। किसी उलझे हुये केस को सुलझाने के बाद जब वह अँगड़ाई लेकर उँगली चटखाने लगता है, तो उसकी सूरत देखने योग्य होती है। वह चारों ओर नज़र डालकर अपने साथी से कहता —"मैं अब यहाँ नहीं रहूँगा !"

उसका साथी भारी बदन का आदमी है। उसका चेहरा चेचक के दागों से भरा है। लेज़र लिखते-लिखते वह छोटे बाबू की तरफ देख लेता है और मुसकरा कर अपने काम में लग जाता है। मानो कहता है—'तुम आज ही जा

सकते हो। सरकारी काम क्या अटका रहेगा? तुम नहीं तो कोई तुम्हारा भाई आ करेगा!'

और यही बात अपने साथी की मुसकराहट में पढ़ कर छोटा बाबू ऊपर से नीचे तक जल जाता है। ये लोग मेरी ज़रा भी परवाह नहीं करते जब कि साहब मेरी तारीफ़ करते करते नहीं थकता। सचमुच साहब समझता है कि दफ़्तर में से छोटे बाबू को निकाल दिया जाय तो कुछ नहीं रहता। यह बात उसने कई बार साफ़ कह दी है। गोरे अफ़सर का मुँह कौन पकड़े? और यही बात दूसरे बाबुओं को खटकती है। अपना अपना काम सभी करते हैं। इस बाबू में फिर कौन-सी विशेषता है? और ऐसे वक्त यदि कम्बख़्ती का मारा चपरासी उसके कमरे में चला जाय तो समझिये ख़ैर नहीं। दिल की सारी भड़ास वह उस पर निकालता है।

"उल्लू का पट्ठा! सुअर! चला जा यहाँ से!"

चपरासी कहता—"बाबू जी...!"

"हरामज़ादे बेईमान!..."

"गाली मत दीजिये बाबू जी..."

छोटे बाबू का पारा और भी तेज़ होता है—"सुअर का बच्चा! क्या कहता है? गाली न दो! तुम नवाब के बच्चे हो न? मैं कहता हूँ चले जाओ, नहीं तो पीट दूँगा। ज़रा भी काम नहीं करने देते कम्बख़्त!"

चपरासी लौट जाता है। कभी वह तेज़ हो जाता है तो ख़ूब ठन जाती है और चेचक के दागों वाले बाबू को बीच-बचाव करना पड़ता है। लेकिन अक्सर ऐसा उसी वक़्त होता है जब साहब ग़ैरहाज़िर होता है। एक दिन सुना, ऐसी ही बात पर दफ़्तरी ने छोटे बाबू के रूल खींच मारा था। यह बात पुरानी है और कहते हैं बहुत दिनों तक छोटे बाबू सब से हँस हँस कर उसकी बातें करते रहे थे।

विष्णु

(२)

और इन्हीं छोटे बाबू से निशिकान्त का झगड़ा हो गया। वैसे तो बहुत दिनों से उनका मन-मुटाव चला आता था। पिछली ६ जनवरी को एक केस में किसी बहुत पुरानी फ़ाइल की ज़रूरत थी। बड़े बाबू ने कहा—"छोटे बाबू को पता होगा। उसने यह काम किया था।"

लेकिन जैसे ही निशिकान्त ने छोटे बाबू के कमरे में प्रवेश करके उनसे कहा—"क्या कृपा करके आप—"

तो छोटे बाबू चीख पड़े—"चले जाओ यहाँ से! मैं कुछ नहीं जानता!' निशिकान्त क्षण भर के लिये स्तम्भित-चकित से रह गये। क्रोध उमड़ आया, लेकिन न जाने क्या सोचकर अपने को संभाल लिया। कहा—"तुमने तो कमाल कर दिया!" और वह लौट आया। उसने बड़े बाबू से बिना कुछ कहे केस उनकी मेज़ पर पटक दिया।

उसी दिन से दोनों की बोल-चाल बन्द थी। दोनों एक दूसरे को नमस्ते भी नहीं करते थे और मज़ेदार बात यह थी कि रोज़ सुबह सबसे पहले वे दोनों ही दफ़्तर आते थे। वे गून-मथून से एक दूसरे की तरफ देखकर अपनी अपनी सीट पर बैठ जाते और काम करने लगते, क्योंकि उन दोनों के अतिरिक्त उस वक़्त दफ़्तर में कोई नहीं होता। उनके हृदय अन्दर ही अन्दर जल भुनकर ख़ाक होते रहते। वे कभी साँस लेने के बहाने झाँक-झाँक कर एक दूसरे को देख लेते और आँखें मीचने का अभिनय कर कुरसी की पीठ पर झुक जाते। और जब भी तीसरा आदमी उन दोनों में से किसी के कमरे में आता तो वे एक ही प्रश्न पर वाद-विवाद करने लगते।

छोटे बाबू के कमरे में बातें होती थीं—

"क्यों जी! कान्त ने आज क्या कहा?"

"कहेंगे क्या? मेरी बुराई करते होंगे कि मैं बदमिज़ाज हूँ, नालायक हूँ।"

"सच!"

"और क्या ? अरे ! उसने बड़े बाबू से मेरी शिकायत की, लेकिन मैंने तो कह दिया कि मेरा दिमाग़ ठीक नहीं हो सकता । वह अपने को समझता क्या है ?"

"बेशक"—एक बाबू ने कहा ।

"और तुमने सुना ? उसने साहब के पास जाकर अपनी सदाचार पत्रिका में कितने अच्छे रिमार्क लिये । शानदार !"

ख़ज़ांची ने अचकचा कर पूछा—"वह साहब के पास गया था ?"

"गया ही होगा ! नहीं तो क्या साहब इतना भला मानस है कि उस जैसे आदमी के लिये लिखे 'शानदार' काम ?"

"हो सकता है—" उसके साथी ने टिप्पणी की ।

"जनाब अब मुझसे बातें नहीं करते हैं । काम होता है तो परचा लिखकर भेजते हैं जैसे ये ही साहब हैं !"

उसका साथी बीच ही में बोल उठा । इसीलिये छोटे बाबू को रुकना पड़ा—"तुम जब आदमी को कुत्ते की तरह झिड़कते हो तो वह क्या करें ?"

"मैं...!"—छोटे बाबू फिर कुछ कहते कि चपरासी ने एक परचा लाकर दिया और बोला—"कान्त बाबू ने यह किताब जल्दी माँगी है ।"

छोटे बाबू अन्दर ही अन्दर जल रहे थे । परचा देख कर आग बबूला हो गये । परचे को मुट्ठी में मसोस कर परे फेंक दिया और कहा—"जाओ, कह दो मेरे पास परचा भेजने की ज़रूरत नहीं !"

चपरासी हँस पड़ा और परचा उठा कर उसने कान्त बाबू को जा कर दे दिया । कान्त बाबू क्रोध से पागल हो उठा । उसके नथने फड़कने लगे । उसने उसी चिट पर लिखाः—

'छोटे बाबू !

तुम्हारे पास आदमी जाता है तो तुम कुत्ते की तरह झिड़कते हो । परचा लिखते हैं तो तुम बिगड़ते हो । आखिर तुम चाहते क्या हो ? सरकारी

काम तुम्हारी वज़ह से रुक नहीं सकते और अगर तुम समझते हो कि काम करने का हक़ तुम्हें ही है तो साहब से कहकर सारे दफ़्तर का चार्ज ले लो। हम अपना रास्ता देखेंगे। नहीं तो तुम्हें आदमी की तरह बरताव करना चाहिये। समझे! सबके पास दिमाग़ है और सब के पास हृदय। न जाने क्या हो जावे!'

भवदीय—

, कान्त

चपरासी के हाथ यह परचा उसने छोटे बाबू के पास भेज दिया और दो मिनिट में ही उसका जवाब भी आगया। छोटे बाबू ने लिखा था :—

—'तुमने मुझे गलत समझा होगा। मैं कभी किसी से बुरा बरताव नहीं करता। तुम हमेशा अपने आदमी को मेरे पास भेज दिया करो। जो तुम चाहोगे वही किताब या केस मैं भेज दूँगा।'

कान्त ने यह पढ़ा तो उसे और भी क्रोध आगया; उसने फिर लिखा:—

छोटे बाबू!

तुम सरासर झूठ बोल रहे हो। तुम सदा आदमी को झिड़कते हो और गाली देते हो। अगर तुम इतने भोले और नम्र व्यवहार करने वाले हो तो क्यों सब लोग तुम्हारे पास जाने से मना करते हैं? तुम शेर नहीं हो,जो फाड़ खाओगे। इस बात का तुम्हारे पास क्या जवाब है?

तुम हमारा भी लिहाज़ नहीं करते। हम लोग तुम्हारे साथी हैं और वर्षों से तुम्हारे साथ काम करते रहे हैं। तब तुम्हारा क्या एतबार? आज यह मामला साहब के सामने पेश होना चाहिये। हम लोगों ने अपने इस्तीफ़े लिख लिये हैं। तुम हमें निकालना ही चाहते हो तो हम तैयार हैं, लेकिन खूब दिल की निकाल कर निकलेंगे।'

भवदीय—

कान्त

कान्त लिख रहा था तो उस का हाथ फिसला पड़ता था और अक्षर तिरछे-टेढ़े बन रहे थे। वह थर थर काँप रहा था। लेकिन अचरज, उस चिट पर छोटे बाबू ने लिखा:—'मैंने आपके दिल को ठेस पहुँचाई, इसके लिये क्षमा माँगता हूँ। मुझे सदा अपना सेवक समझें।'

कान्त ने एक बार, दो बार उस चिट को पढ़ा और उसकी कँपकँपी सहसा थम गई। उसने मन ही मन कहा—'कैसा चालाक आदमी है!' लेकिन उसका मन खिल उठा था और वह समझ रहा था यह विजय मेरी है।

उसने फिर उस चिट पर जवाब लिखा :—

'छोटे बाबू!

माफ़ वही कर सकता है जो सज़ा दे सकता है। मुझ से माफ़ी माँगना सरासर धोखेबाज़ी है। दफ़्तर के काम होने चाहियें, बस यही मैं चाहता हूँ। मैं तुम्हारे ऐसे आदमी से कोई भी ताल्लुक नहीं रखना चाहता। दफ़्तर से बाहर मेरा तुम्हारा संबंध ही क्या है? मैं समझता हूँ तुम्हें ये शब्द लिखते हुए कितना कष्ट हुआ होगा। कृपा कर आप अपने शब्द लौटा लें।

भवदीय—

कान्त

कान्त ने यह लिख तो दिया पर भेजा नहीं। लिखा भी कई बार था। यह चिट कहीं चौथी बार जा कर ठीक ठीक बनी थी, फिर भी उसने उसे जेब में डाल लिया। वह नहीं चाहता था यह माफ़ीनामा व्यर्थ जावे। इस माफ़ी-नामे के बूते पर वह छोटे बाबू को नीचा दिखा सकता है और उसने अपने साथी को बुलाकर सचमुच वह परचा दिखा भी दिया।

साथी ने अचरज से पढ़कर कहा—"छोटे बाबू ने माफ़ी माँगी; बिल्कुल झूठ!"

"तुम देख सकते हो, उसने ही लिखा है..."

। है!"

विष्णु

"लेकिन मैं इस परचे को सँभाल कर रखूँगा।"

"रखना ही चाहिये" कान्त के साथी ने कहा—"और तुम्हें पता है, उसने बड़े बाबू को क्या जवाब दिया है ?"

"क्या दिया है ?"

"यही कि मैं कान्त से मज़ाक किया करता हूँ, वह बुरा मान गया होगा।

"मज़ाक ?"

"हाँ !"

कान्त हँस पड़ा—"बड़ा अजीब आदमी है ! कितना होशियार, कितना धूर्त और कितना कायर !"

(३)

निशिकान्त ने समझा—चलो झगड़ा यहीं खतम होगया, लेकिन चार दिन बाद ही उसकी आशा काफ़ूर होगई। उसने जो कुछ सुना उस पर उसे हँसी आये बिना न रही। उसने अपने साथी से कहा—"कितनी बेवकूफ़ी की बात है ?"

साथी ने कहा— "वह तुम्हारे खिलाफ़ खूब प्रोपेगैण्डा कर रहा है। मुझसे कहता था, तुम्हारे अफ़सर साहब का मिज़ाज गरमा गया है।"

"सच !"

"हाँ, और अभी उसने कल टाइपिस्ट से कहा—कान्त बाबू बड़ा बदमिज़ाज है, उसे ठीक करना चाहिए !"

लेकिन सबसे बढ़कर विचित्र बात तो वह थी, जो खज़ांची ने बताई। उसने कहा कि—"छोटे बाबू कल बड़े क्रोध में थे और कहते थे—"कान्त मुझे निकालने पर तुला है !"

"मैं !"—अचकचाकर कान्त ने कहा।

"और कहता था कि—उसने अब साहब से साट-गाँठ लगाई है !"

कान्त हँस पड़ा— 'मैं तो साहब की सूरत देखना भी न चाहूँगा ! उसका

प्रेम-पात्र बनना तो स्वप्न में भी दूर है !"

प्रत्येक किरानी ने उसे कुछ ऐसी ही बातें बताईं । आश्चर्य, उसे तनिक भी क्रोध नहीं आया । उसे छोटे बाबू से जो घृणा हो चली थी, वह नष्ट हो गई । उसके स्थान पर दया उमड़ आई और वह मन ही मन बहुत हँसा--'यह किरानी भी विचित्र जानवर है !' और उसने निश्चय किया- आज वह उसे अवश्य पराजित कर देगा । ऐसा पछाड़ेगा कि वह बोलने का नाम भी न लेगा ।

उसने अपने साथी से कहा--"आज मैं उससे अकेले में बातें करूँगा ।"

साथी चौंककर बोला--"मगर उसने कुछ ऐसा-वैसा कहा तो तुम्हें गुस्सा आ जायेगा और फिर हाथा-पाई का डर है । वह बद-मिजाज़ आदमी है !"

कान्त ने कहा--"मैं उसके लिये काफ़ी हूँ, पर तुमसे कहता हूं; उसमें हिम्मत ज़रा भी नहीं है ।"

"हो सकता है"--साथी ने कहा--"फिर भी साहब उसके हाथ में है, उसके मुँह लगना ठीक नहीं । माना कि बड़े बाबू की तुमसे नातेदारी है, पर बड़े बाबू उससे काँपते हैं, काँपते !"

कान्त ने कहा--"देखते रहिये, क्या होता है !"

× × ×

और उसी सन्ध्या को जब सब किरानी चले गये थे, वह दफ़्तर में बैठा रहा । दिन ढल चुका था और दफ़्तर के पश्चिमी द्वार से होकर सूरज की अन्तिम किरण दरख्तों के झुरमुट पर पड़ कर ग़ायब हो गई थी । कान्त अपनी कुरसी छोड़कर स्टोर-कीपर की कुरसी पर आ बैठा ताकि छोटे बाबू को देखता रहे । उसने आँखें बन्द कर लीं । कभी नज़र चुराकर उधर देख लेता था । वह ध्यान-मग्न होता जा रहा था, पर शरीर न जाने क्यों काँप कप उठता था ! विचारों का चक्कर उसे रह-रह कर झकझोर डालता था ।

'मैं उससे कह दूँगा, तुम किस बिरते पर इतना कूदते हो ? तुम्हारे कुछ

पैसे जो बढ गये ! छिः छिः, तुम इतने कमीन हो कि ज़रा-सी तरक्क़ी पर अपने सब साथियों को आदमी भी नहीं समझते !' छोटा बाबू खिसियाना-सा होकर कहेगा कि...लेकिन उसे छोटे बाबू का कहना याद ही नहीं आता था, वह तो अपनी ही बात सोचता चला जा रहा था कि वह कहेगा—'इस दुनियां में है ही क्या, प्रेम और मोहब्बत ! तुम किसी से प्रेम भरे दो शब्द कहोगे, कोई तुम्हें भी कहेगा। तुम एक बार ऐंठोगे तो दुनियां तुमसे लाख बार ऐंठेगी !

'और क्या तुम समझते हो कि तुम शक्तिशाली हो और तुम्हारे विरोधी दब्बू और आश्रयहीन हैं ! कहता हूँ, दुश्मन आटे का भी बुरा होता है। न जाने कब आ दबावे ! हम तुमसे दफ्तर में नहीं जीत सकते तो हमारा हाथ किसने पकड़ा है ? किसी दिन गले पर अँगूठा रख देंगे ! निराश आदमी परिणाम का विचार नहीं करता !

"तुम होशियार हो यह तो हम मानते हैं, पर हृदय-हीन बुद्धि पतन की ओर ले जाने वाली है। जिस आदमी में आदमियत ही नहीं है, उस की सुन्दरता पर दुनियां थूकती है"......और ऐसे ही सोचते-सोचते उसे झपकी सी आ गई और उसने देखा— कोई चुपके-चुपके उसके पिछे से आ रहा है। वह पद-चाप सुन रहा है, पर बोल नहीं सकता। आगन्तुक ने आहिस्ता से अपना हाथ उठाया और उसके गले को दबोच लिया।

अरे, यह तो छोटे बाबू !......

वह तड़फड़ा उठा। उसने चीख़ मारनी चाही पर आंख खुल गई। चौंक कर उसने देखा, वह सपना था। उसका दिल धक् धक् कर रहा था, पर उसे हँसी आ गई। उसी समय उसने देखा— छोटे बाबू खट् खट् करके पैड़ियाँ उतर गये हैं। वह झपटा और कांपता काँपता बोला—"मैं भी आ रहा हूँ !"

छोटे बाबू हठात् रुक गये। कान्त की अवस्था उस समय अद्भुत थी। वह थर थर काँप रहा था और उसके मुंह से उखड़े-उखड़े शब्द निकल रहे थे।

यह कई महीने के बाद छोटे बाबू से बोला था। उसने कहा—"आपकी सलाह क्या है ?"

छोटे बाबू मुस्करा उठे—"आपका मतलब ?"

"मतलब ! आपने मेरे विरुद्ध जो प्रोपेगैण्डा फैलाया है और जो कुछ आप कल कह रहे...।"

छोटे बाबू बीच ही में बोल उठे— "ओह ! यह बात है, अरे हमारा आपका क्या झगड़ा ! मैंने जानबूझ कर ऐसा किया था !"

"जानबूझ कर !"—कान्त की आवाज़ तेज़ थी।

"हाँ; कि तुम्हें क्रोध आवे, लेकिन छोड़ो भी इन बातों को ! ग़लती मेरी थी। मैं ६ जनवरी वाली घटना से बड़ा लज्जित हूं। क्या तुम मुझे क्षमा नहीं कर दोगे ?"

कान्त इसके लिये तैयार नहीं था। उसका दिल बातों से भरा हुआ था। उसने कहा—"लेकिन तुम ने टाइपिस्ट से कहा......"

छोटे बाबू बीच में ही बोल उठे। उसे रुकना पड़ा। उसकी कँप-कँपी दूर हो गई थी और वह मुस्करा उठा था। छोटे बाबू ने कहा—"मैं मानता हूँ मैंने ज़हर उगला; पर आप मुझे माफ़ कर दें। वस्तुतः मुझे चढ़ गई थी। मैं समझ ही नहीं रहा था कि तुम से कैसे क्षमा माँगूँ ..."

कान्त हँस पड़े—"और यह न जानकर कि कैसे माँगूँ, मुझे उलटी गाली सुनाते चले गये !"

छोटे बाबू खिसिया गये—"पक्ष पड़ गया था, पर आपने मुझे क्षमा माँगने का अवसर दिया, इसके लिये कृतज्ञ हूँ। हम अब कभी भी न झगड़ेंगे, पर आपने भी मुझे कैसे लिखा कि मैं आपको निकालने पर तुला हूँ। आप कैसे ऐसा सोच सके ?"

कान्त ने कहा—"मैं तो बहुत सोच चुका हूँ। यह मेरी ग़लती हो सकती है, लेकिन पहले आपकी तरफ़ से हुई, मैं क्या करता। आपने तो

कमाल कर दिया !"

"मैं लज्जित हूँ," उन्होंने कहा—"पर मैं क्या करूं ? मेरे पास इतना पेचीदा काम है कि मैं पागल हो जाता हूँ। मैं मानता हूँ किसी को भिड़कने का मुझे क्या अधिकार है और मैं अपने स्वभाव को सुधारने का उद्योग करूँगा। देखो न, मैं कितना भुरता जा रहा हूँ ?"

"बेशक! इस तरह तो आप बहुत जल्दी ही मर जायेंगे। आपको अपनी सेहत का ध्यान रखना चाहिये। आखिर यह घिस-घिस जीवन के लिये ही तो है !"

"हाँ हाँ !"—छोटे बाबू ने कहा—"मैं कल साहब से कहूँगा—मैं इतना काम नहीं कर सकता। मेरा दिमाग़ खराब होता जा रहा है। और देखो न ! लोग मेरे इतने विरुद्ध होते जा रहे हैं कि मुझे डर है मैं अपनी जान न खो बैठूँ, ज़रा सी देर में दो पैसे का आदमी मेरी इज्जत उतार ले सकता है। कान्त ! मैं आपका जन्म-जन्म आभारी रहूँगा— आपने मुझे क्षमा मांगने का अवसर देकर गिरने से बचा लिया !"

कान्त अपनी सारी बातें भूल गया। उसने भरे हृदय से कहा—"कोई बात नहीं जी ! गलत-फ़हमी भी दूर हो गई। यह अच्छा हुआ। दुनियां है ही क्या— प्रेम और मोहब्बत से बोलना ही है ! अच्छा तो मैं चलूँ ?"

छोटे बाबू बोले—"कल सन्ध्या का भोजन मेरे घर करना, अच्छा !"

"अच्छा, अच्छा ! मीठी डिशेज़ तैयार करवाना !"

"ज़रुर-ज़रूर ! अच्छा नमस्ते।"

"नमस्ते"

कान्त लौट चला। बातें करते-करते वे बहुत दूर चले गये थे। अँधेरा काफ़ी गहरा हो चुका था और सड़क बिजली की रोशनी से जगमग कर रही थी। उसने पास से निकलते हुये आदमियों को गर्व से देखा। उसका हृदय कह रहा था—'देखा, शेर को उसके घर में कैसा पछाड़ा !'

हालाँ कि कान्त के दिल की बात दिल ही में रह गई थी, पर उसे अब कुछ भी याद नहीं था। केवल आने वाली कल की धुँधली स्मृति उसके मस्तक में मँड़रा रही थी। बारी-बारी सब किरानी कह रहे थे—'कान्त विजयी हुआ।' 'हम सब कान्त के कृतज्ञ हैं!'

और वह सहसा चौंक पड़ा। अपने मोहल्ले में घुसते-घुसते वह अपने पड़ोसी से टकरा गया था। उसने कहा—"मैं क्षमा चहता हूँ।"

जीवन : एक कहानी....

●

इस साल दिवाली का त्यौहार कुछ देर से आया। अक्तूबर चुप-चाप चला गया था। निशिकान्त ने जेब से एक परचा निकाला और सोचने लगा— कहीं इस महीने का खर्च आमदनी से बढ़ तो नहीं जायगा।

निशिकान्त गरीब नहीं है, लेकिन धनवान होने का दावा भी नहीं कर सकता; उसके बाप-दादा ने उसके लिये कोई सम्पत्ति नहीं छोड़ी है, केवल एक रिश्तेदार की मेहरबानी से ५०) की नौकरी अवश्य मिल गई है। दुनियां कहती है—आज के संसार में ५०) कमाने वाला अमीर होता है। होगा, वह भी हो सकता है, फिर भी दावा नहीं किया जा सकता। कोई करता भी नहीं। हाँ, उनका मूल्य अवश्य आस्मान के चाँद की तरह, घटता बढ़ता रहता है। आज अगर ५०) की कीमत ५००) में आंकी जा रही है, तो कल केवल पांच भी रह सकती है।

खैर, उसने वह परचा देखा तो खर्चे का जोड़ ५६) के लगभग था और आमदनी वही पचास। अब यहाँ से सोचना शुरू हुआ। तखमीने लड़ाये गये, तितलियों की तरह रंग-बिरंगी कल्पनायें आ-आकर भाग गईं, बजट बन-बन कर बिगड़ गये। उस समय उसकी हालत भारत सरकार के अर्थ-सदस्य से भी बुरी थी। वह बेचारा सरकारी बजट में बचत दिखा कर भी असेम्बली के मैम्बरों को जवाब देते देते काँप उठता है, जैसे चमड़े का ढोल डंके की चोट पड़ने पर काँप उठता है; लेकिन उसका क्या होगा? वह अपने विरोधी-सदस्य मन को क्या जवाब देगा?

न जाने बहुत देर तक उसका मन क्यों नहीं बोला। जो हो, वह भी अपनी ओर से आप लाचार हो रहा है। भाग्य खोटा है, नहीं तो बड़े साहब की आयु भी उसके जितनी है। वह अँगरेजी का एक अक्षर भी ठीक नहीं

लिख सकता; लेकिन प्रति मास १०००) जेब में डाल कर सरकारी कोठी में ऐश के साथ रहता है। सरकारी-- पेशगी पर मोटर रखी हुई है और सरकारी खर्च पर ही सात समन्दर पार तक की खबर ले आता है।

उसकी आँखें बरसात के कवि की तरह बरस पड़ीं और हारी हुई सरकार के युद्ध-मन्त्री की तरह उसने एक लम्बी सांस लेकर कहा—'तकदी-ईर।'

और इस तकदीर के साथ-साथ सावन-भादों की काली-काली डरावनी घटा की तरह कल्पना फिर मस्तिष्क में घुस आई। अब मन की बारी थी। उसने कुछ गम्भीर होकर कहा-- क्यों जी, यह जो तुम ने तीन रुपये आठ आने किसी अखबार के चन्दे के लिये लिखे हैं क्या बहुत जरूरी हैं?

बड़ा कम्बख्त है। बरसों के बाद एक अखबार मँगाने को जी किया था; लेकिन अब नहीं आ सकता।

निशिकान्त ने न जाने कैसे कह दिया—नहीं, बहुत जरुरी तो नहीं है।

बिना राय लिये ही कटौती का पहला प्रस्ताव पास हो गया। वे फिर बोले—यह डेढ़ रुपया जो तुमने चिट्ठी-चपाती और जेब खर्च के लिये लिखा है, यह भी कम हो सकता है?

इस बार कान्त चुप नहीं रह सका। उसने कहा—श्रीमानजी, हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के बाहर जो मेरे मित्र और सम्बन्धी हैं वे एक महीने तक मेरे विषय में कुछ भी न जानें यह कैसे हो सकता है। नहीं! यह नहीं हो सकता, एक दम नहीं हो सकता।

पर वह पीछे नहीं हटा, बोला--सुनो जी, परमात्मा की दया से तुम स्वस्थ हो। इसलिये खत-पत्तर लिखने की कोई खास जरूरत नहीं है। तुम्हारे दोस्तों के पास जब कोई लिखने योग्य बात होगी तो आप लिख देंगे।

कान्त अप्रतिभ हुआ। बाजी मन के हाथ रही। इसी तरह चूल्हे-चौके के खर्च पर कुल्हाड़ा चला। रोज़ाना के अखबार की कुछ प्रतियां कम हुईं और तब कहीं ४६।।।)।। का बजट पास हुआ।

विष्णु

अब कान्त की ओर देखकर मन हस पड़ा मानो कहना चाहता है—कुछ समझ में आया, मैं कितना गम्भीर हूँ !

वह कुछ नहीं समझा; लेकिन मनको शान्त ही करना था, कह दिया—हाँ, हाँ, तुम्हारी बात ठीक है। आज से मैं तुम्हारा कहना मानूँगा।

कान्त ने परचे को जेब में रख दिया और तब पता लगा- दफ्तर से घर तक का एक फर्लाङ्ग का रास्ता समाप्त हो चुका है और वह घर की देहरी पर खड़ा है।

(२)

उसने कोट को खूंटी पर लटका कर माँ से कहा— माँ, इस बार दिवाली पर दो बड़ी-बड़ी तसवीर खरीदने की इच्छा है।

माँ बोली—तो खरीद लाना, भइया। इस दिन के लिये ही तो ये चीजें बनी हैं।

वह बड़ा खुश हुआ। मेज पर बैठकर 'आस्कर वाइल्ड' की एक किताब के पन्ने उलटने लगा। उसने एक स्थान पर लिखा है—"जहाँ दुख है, वहीं पवित्रता है। मनुष्य एक दिन इस बात को समझेगा।" परन्तु उसके समझ में कुछ नहीं आया और वह समझने की चेष्टा-सी करने लगा।

तभी माँ ने आकर कहा—भइया, तेरी भाभी कल अपनी बहन के घर जावेगी। उसके बच्चों के कोट के लिये कपड़ा तो लादेना।

प्राण जहां थे वहीं रुक गये। वह हठात् उसकी ओर देखने लगा। उसने फिर कहा—देर करने से बाजार बन्द हो जायगा, बेटा।

वह ऐसे विश्वास से बोल रही थी मानों दुकान अपने घर की है। वहां तक जाना है और कपड़ा उठा लाना है। उनकी एक दुकान है, परन्तु वह बहुत दूर उत्तर-पश्चिम के एक गांव में है, जहाँ कान्त का बूढ़ा बाप सबेरे से सांझ तक ग्राहकों से झें-झें करके रात को खाली पेट ही सो रहता है।

वह भौंचक्का-सा होकर देखता रहा; सच जानो, यह उस पर वज्रपात था।

माँ ने उसे चुप देखकर कहा-- सुना, मैं क्या कहती हूँ ?

उसने माँ को भरसक समझाने की कोशिश की कि उसके जेब में पैसे नहीं हैं; उधार कोई देता नहीं, लेकिन मां की तो एक ही दलील थी--भइया, यह तो लाना ही पड़ेगा। कब-कब उसके जाना होता है, बहुत करे सस्ता ले आना।

"सस्ता ! हुँ, अच्छा मैं अभी जाता हूँ।" यह कहकर वह उठा और बाजार चला गया। जब लौटा तो शरीर की थकान मिट रही थी। किसी प्रकार की चिन्ता भी नहीं थी।

मां ने कपड़ा देखकर कहा-- यह तो बढ़िया मालूम होता है ! कितने का लाया रे ?

"तीन रुपये का।" उसने कहा और फिर 'आस्कर वाइल्ड' की उसी पंक्ति का अर्थ समझने की चेष्टा करने लगा......यह क्या ?......कोई उसका नाम लेकर पुकार रहा है--"मि० निशिकान्त" नीचे से किसी ने पुकारा।

उसने कहा--हां जी।

और इसी जी-जी के बीच उसने झांक कर देखा--एक बड़ासा गट्ठर थामे कोई मनुष्य जाति का जीव नीचे खड़ा था। उसने 'नमस्ते' कही। उन्होंने हाथ जोड़े और थोड़े-से मुस्कराये भी। यदि कान्त चितेरा होता तो इस कहानी के साथ उनकी तस्वीर भी खींचता।

खैर, वे ऊपर आये। कान्त ने कुरसी सरका कर कहा--बैठिये और वे बैठ गये।

कान्तने कहा--कहिये, कहां से आना हुआ ?

अब वे बोले--मैं देहली के......नामक पुस्तक-प्रकाशक का एजेन्ट हूँ। पुस्तकों का गट्ठर देखकर ही दिल घबराने लगा था। अब तो वह हाहाकार कर उठा; पर मांस की कोटरी के बीच छिपा रहने के कारण वे महाशय हाहाकार को सुन नहीं सके। वे कहते रहे--आज सबेरे वहां आया था; लेकिन किसी ने एक पुस्तक नहीं खरीदी।

विष्णु

कान्त ने कहा--हाँ, इस बात में यह ज़िला बहुत पीछे है।

वे बोले-- जी हां, ऐसा ही मालूम होता है; लेकिन सबने यही कहा कि यहां पर तो 'श्री निशिकान्त ही पुस्तकों के प्रेमी हैं। कान्त जैसे कुछ कहते कहते रुक गया। अन्दर ही अन्दर कोई बोला--सुनते रहो जी। और बाहर से वह केवल इतना ही कह सका--मैं हो...हो...ओ।

विक्रेता महाशय पुस्तकों का गट्ठर खोल कर बोले—जी हां, सबने आपका ही नाम लिया है।

इस बार कान्त हँस पड़ा और एक पुस्तक हाथ में उठाली। वे बोले- मैंने तो उनसे कहा भी, पुस्तक पढ़ने के प्रेमी तो सभी होते हैं। क्या श्री निशिकान्त पुस्तक संग्रह भी करते हैं।

कान्त उनकी ओर देखने लगा। मन ने कहा—कितना सीधा और सच्चा है यह एजेन्ट।

कान्तने कहा--मैं तो कहूँगा बड़ा शरारती और बदमाश है। गाहक पटा रहा है। लेकिन...यह गुदगुदी-सी कैसी हो रही है?.... .

हां, वे कह रहे हैं—तब उत्तर दिया "उनकी अपनी लाइब्रेरी बड़ी सुन्दर है। सैकड़ों पुस्तकें उसके पास जमा हैं।"

कान्त रोकने पर भी बोला--सो तो ठीक है। आप देखते हैं मेज पर कितनी पुस्तकें पड़ी हैं। उधर अलमारी भरी हुई है; लेकिन......

एजेएट बोले—तो आप पुस्तक देखिये न, पण्डित जी!

यहां एक बात और साफ करनी उचित है। कान्त पण्डित-वन्डित कुछ नहीं है। जन्म का बनिया है। स्कूली ज़माने में 'गुप्ता' लिखने पर भी लोग पण्डित कहते थे। न जाने उसके फूले हुए गालों में कितने श्राद्धों का माल भरा हुआ है—ऐसी कई सहपाठियों की अटल धारणा थी। बाद में आर्य-समाज में सन्ध्या प्रार्थना करा देने पर या कभी कभी लेक्चर दे देने पर वह काफी प्रसिद्ध व्यक्ति बन गया था। तब समाजियों ने कहा--हम जन्म से जात-

पाँत नहीं मानते। तुम विद्वान हो, इस लिये पण्डित हो। बस बिना माँगे हुए इस खिताब को सिर पर लाद कर वह प्रसन्न तो नहीं हुआ, परन्तु फेंक भी नहीं सका।

... हाँ तो एजेन्ट महोदय ने कहा—मुझे तो यहाँ आने का किराया भी जेब से देना पड़ेगा। आप पुस्तक देखें तो सही। सब आप ही की प्रशंसा करते हैं।

वह चुपचाप पुस्तक टटोलने लगा और बोला—परन्तु आज कल मेरी आर्थिक अवस्था ठीक नहीं है। पहले तो मैं कई मासिक पत्र भी मँगाता था।

"जी हाँ, आर्थिक अवस्था तो सारे देश ही की बिगड़ रही है, तभी तो पण्डित जवाहरलाल जी आर्थिक-स्वराज्य के हामी हैं।"

उसने कहा—तब मैं क्या करूँ ? आप आये हैं कष्ट उठा कर......

लेकिन वे नहीं बोले। आराम से कुरसी पर पैर फैला कर अखबार पढ़ते रहे, मानों पुस्तक मेरे हाथों सौंप कर निश्चिन्त हैं। कान्त फिर उनकी पुस्तक टटोलने लगा। दो-तीन पुस्तकें लेकर बोला,—क्यों जी! इनकी क्या कीमत होगी ?

वे बिना मेरी ओर देखे बोले—आप छाँट लीजिये। कीमत फिर तै हो सकती है।

कान्त ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया—श्रीमान् जी, मेरी अवस्था ठीक नहीं है। मैं अधिक पुस्तक नहीं खरीद सकता।

अब वे बोले—अच्छा इनका मूल्य २॥) रुपया होता है, आप १॥=) दे दें। आप जानते हैं, इन किताबों पर हमें २५ फ़ी सदी कमीशन मिलता है। ......हाँ, आपने यह पुस्तक देखी है ?

कान्त ने पूछा—कौनसी ?

"सुनीता।"

"सुनीता-आ।"

विष्णु

"जी हाँ, हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास। लेखक हैं श्री जैनेन्द्रकुमार।"

"क्यों जी, क्या कीमत है इसकी?"

"यही तीन है; पर आपसे दो ही लेंगे।"

कान्त बड़ा खुश हुआ, उसने कहा—क्यों जी, आपको कितना कमीशन मिलता है?

वे बोले यही— पचीस, तीस, चालीस, पचास, जैसी पुस्तक हो।

कान्त ने मन ही मन उनकी गिनती पूरी की—साठ, सत्तर, अस्सी, नव्वे, सौ और कहा—अच्छा तो आपके तीन रुपये चौदह आने हुए। लीजिये।

रुपयों को टेंट में बाँधते हुए वे बोले— मानों इस कृतज्ञता का बोझ वे संभाल नहीं सकते—आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ! आपकी जैसी प्रशंसा सुनी थी वैसे ही निकले।

कान्तने भी दाँत निपोड़ कर कहा—मैं किस योग्य हूँ। आर्थिक अवस्था ......आदि।

वे चले गये। जाते समय बोले—आप देहली आते रहते हैं। कभी गरीबखाने पर भी पधारिये। वहाँ बहुत पुस्तकें हैं। और पुस्तकों के लिये ही क्यों, आप तो हमारे मित्र हुए न!

कान्त हँस पड़ा—अच्छा, नमस्ते।

"नमस्ते!"

वे चले गये, और कान्त फिर मेज पर झुका। इस बार 'आस्कर वाइल्ड' नहीं, बल्कि परचा हाथ में था। तीन जमा, चार जमा, ४६।||)||, कुल हुए छप्पन रुपये साढ़े बारह आने। हुँ...

खैर, अब तो उसे नींद आरही है, इन प्रश्नों को फिर कभी शान्ति से बैठ कर सुलझावेगा। माता जी दूध पीने के लिये बुला रही हैं और बाहर गली में बूढ़ी दादी अपने पोते को कहानी सुना रही हैं—एक कहानी पौदा रानी . आदि

कान्त भी सोचता एक कहानी.........आगे आप जोड़ लें।

कहानी-लेखक

●

कई दिनों से उमड़ घुमड़ कर जो विचार कान्त के मस्तिष्क में बेचैनी पैदा कर रहे थे आज उन्होंने ठोस रूप धारण कर लिया। उसने कापी-कलम उठा कर निश्चय किया— "आज मैं कहानी लिखूंगा।" उसने कलम उठाई उसका हाथ कांपा, दिल धड़का, पर फिर भी उसने लिखा— "एक आदमी था। उसका नाम था कल्लू......।"

कलम रुक गई—था त ा, पर......

कान्त ने मुँह कोहनी पर टिका लिया। आंखें शून्य में ताकने लगीं। मस्तिष्क में विचार आये और गये, घटनायें उठीं और मिटीं, लेकिन रुका कुछ नहीं। सारी प्रसव-पीड़ा व्यर्थ चली गई, केवल वेदना शेष रह गई। उसे लेकर वह क्या करे? उसने तो उसे केवल झुंझलाहट से भर दिया। उसके भीतर से किसी ने कहा—"छोड़ इस जंजाल को! तू लेखक नहीं बन सकता!"

"वाह! मैं बनूंगा!" अपनी ही अन्तर्वाणी का विरोध करते हुए उसने मन-ही मन कहा।

"देखेंगे!" उसके अन्तर्वासी ने चुनौती दी।

उसने अपने ही मन की चुनौती स्वीकार कर ली। वह उठा और एक पुस्तक ले आया। उसके पन्ने पलटने लगा। देख जयशंकर प्रसाद की एक कहानी है—"आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे छुआ तक नहीं। आज सातवां दिन है सरकार।"

"ठीक है।" कहानी पढ़ने के बाद कांत ने मन ही मन कहा। उसे एक 'आइडिया' और 'प्लाट' भी मिल गया। वह उत्साहित हो उठा।

कहानी चल निकली—"कल्लू शराब पीता था......"

विष्णु

उसके बाद, आर्य-समाज में शराब की निन्दा में जो कुछ सुना था या जो कुछ पढ़ा था, वह सब उसने लिख दिया। आगे......

कलम में तिनका आ गया। दिमाग झुंझला उठा—...पत्रिका के पन्ने फिर पलटे। कहानी आगे से पढ़ी—"अब क्यों रोता है रे, छोकरे ?" "मैंने दिन भर से कुछ नहीं खाया।"

"छी-छी ! मैं कहानी की नकल करता हूँ !" यह सोचकर कांत ने एक-दम पुस्तक बन्द कर दी और लिखने लगा—"पर शराबी होकर भी कल्लू दयालु था। सदा दूसरों के दुख-दर्द में साझी होकर रहता था। एक दिन उसने एक लड़के को देखा......"

उसके बाद कांत की प्रेरणा जैसे छलांगें भरने लगी। वह पृष्ठ पर पृष्ठ भरता चला गया। उसका दिल उछलने लगा। साथ ही ससार में अंधेरा बढ़ने लगा।

अन्दर से माँ आई और बोली—"रोटी खा ले भैया !"

"अभी आया, माँ ! अभी ! बस जरा सा और लिखना है।"

मां लौट गई, परन्तु कहानी आगे न बढ़ी।

"बस तनिक और। फिर अन्त कर दूँगा। कल्लू को शराब छोड़ देनी होगी। हाँ 'शराब का त्याग' यही कहानो का शीर्षक होगा।" यह सोच कर उसने फिर पुस्तक उठाई और एक बार पूरी कहानी पढ़ डाली। पढ़ चुका तो जैसे दिल का बोझ उतर गया। मस्तिष्क में सहसा एक अछूता विचार आ गया था। उसको व्यक्त करते करते कहानी का अन्त आगया। लड़का लावारिस था, उसे कल्लू ने अपने पास रख लिया। रख क्या लिया उसका जीवन सुधर गया। लड़के के मोह ने उसे ऐसा जकड़ा कि शराब पीछे रह गयी... आदि-आदि।

कांत ने कापी बन्द कर दी और उठ कर अगड़ाई लेने लगा। उसके दिमाग से एक भारी बोझ उतर गया था, उसकी प्रसव-वेदना पूरी तरह फलवती

साबित हुई थी। वह हँस पड़ा—"मैंने कहानी लिखी है! मैं एक दिन उपन्यास लिखूंगा, मुझे पुरस्कार मिलेगा!"

पुरस्कार कब मिलेगा, मिलेगा भी या नहीं कौन जाने? लेकिन पुरस्कार पाने का जो सुख होता है वह कान्त को अभी मिल गया था। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में एक विशेष अभिलाषा होती है। उसके चरितार्थ होने पर वह अपना जीवन सफल मानने लगता है—कम से-कम तत्काल के लिये। कान्त ने चाहा था वह कहानी-लेखक बने और वह बन गया था! आज वह तृप्त था, मुक्त—स्थितप्रज्ञ!

साहित्य-सृजन का कारण है आत्माभिव्यक्ति और जिज्ञासा। कान्त की कहानी उसी आत्माभिव्यक्ति और जिज्ञासा का परिणाम थी। परन्तु जिज्ञासा का एक और रूप है—अपनी बात किसी से कहना। इसीलिये कांत व्यग्र हो उठा उसकी बात जो कहानी के रूप में प्रकट हुई है उसे कोई सुने! कौन सुने! माँ? हूँ! वह क्या जाने साहित्य क्या होता है? उस लिये वह बन्दर की तरह अदरक का स्वाद है।

"तो चन्द्र को सुनाऊँ? हां वही ठीक रहेगा।" उसने मन-ही-मन कहा। वह उसका सहपाठी रहा है। समझदार है।

बस कान्त ने उसी रात को चन्द्र को पकड़ा। बोला— "चन्द्र, तुम से एक काम है।"

"क्या?"

"है, आओ!"

"पहले बताओ?"

कान्त ऐसे झिझका जैसे कोई नवयौवना विवाह की बातें करते झिझकती है, यद्यपि उसके शरीर का रोम रोम एक अज्ञात अनुपम मादकता से सिहरता होता है। उसने धीरे से कहा— "मैंने कहानी लिखी है।"

अचरज से चन्द्र बोला— "तुमने?"

"हां मैंने !"

"देखूं......"

कान्त तन्मय होकर कहानी पढ़ने लगा और चन्द्र उसी व्यग्रता से सुनने लगा। एक पृष्ठ ! दो पृष्ठ ! चन्द्र ने गर्दन हिलायी !

"क्या है ?"—उत्सुक कान्त ने पूछा।

"पढ़ो-पढ़ो !"

तीन, चार, पांच, छः पृष्ठ ! चन्द्र से नहीं रहा गया, बोला— "बस सुन ली तुम्हारी कहानी ! तुमने लिखी है ?"

कांत सहसा कांप उठा— "हां, मैंने लिखी है, क्यों ?"

"झूठ बोलते हो ! यह तो जयशंकर प्रसाद की "मधुआ" कहानी की नकल है !"

सुन कर कांत का चेहरा तमतमा उठा। धरती फटे तो वह समा जावे। अस्फुट स्वर में बोला—

"नहीं !"

"नहीं क्या, मिला लो !"

"नहीं है !"

"है !"

"मैं कहता हूँ, मैं कुछ नहीं जानता। यह कहानी मैंने लिखी है, यह मेरी है !" चन्द्र अब बड़े ज़ोर से खिल्ली उड़ा कर हंस पड़ा। बोला— "कहानी नकल करते हैं और फिर अकड़ते हैं, चोट्टे कहीं के !"

"मैं चोर ?"

"जी हां, चोर और सीनाजोर !"

बात आगे बढ़ी। कांत क्रोध से कांप उठा। चिल्ला कर बोला— "मैं आज से तुमसे नहीं बोलूंगा !"

इतना कह कर कान्त तेज़ी से घर में घुस गया। कहानी हाथ में थी।

उसको चीर कर टुकड़े टुकड़े कर डाले और आग में फेंक दिये। केवल वही नहीं जो कुछ भी उसके सामने आया उसकी उसने वही दुर्गति की। लेकिन त्रस्त और पीड़ित होकर जब वह रात को अपने बिस्तर पर लेटा तो उसका अन्त-र्मन बड़ी तेजी से टीसने लगा। वह देर तक छटपटाता रहा, फिर रोने लगा। रोते रोते उसने अपने मन में कहा— "चन्द्र ठीक कहता है! मैंने नकल की है। मैं लेखक नहीं बन सकता। नहीं बन सकता!"

लेकिन हिंदी सेवा की प्रतिज्ञा?

स्वीकारोक्ति से दिल का जो बोझ उतरा था, वह प्रतिज्ञा-भंग के डर से फिर उभर आया।

× × ×

कात निराश होकर भी हतोत्साह नहीं हुआ। उसने प्रतिज्ञा की थी और प्रतिज्ञा का भूत उसके कमजोर दिल पर बुरी तरह हावी था। इसलिये एक दिन दफ्तर में बैठे बैठे लेखक बनने का एक और तरीका उसे सूझ गया। वह उछल पड़ा और उसने निश्चय किया— "मैं आज ही घर जाकर इस तरीके का उपयोग करूंगा।"

सन्ध्या को घर लौटा तो सीधा अपनी मेज के पास पहुँचा और दराज में से वे सब काग़ज ढूंढ निकाले जिन पर समाज-मंदिर में व्याख्यान देने के लिये वह नोट लिख लिया करता था। बहुत देर तक उन्हें छांटता रहा और फिर रात को उन्हीं की मदद से उसने स्वामी दयानन्द सरस्वती पर एक लेख लिख डाला। यद्यपि लिखते समय उसे कई बार काट-छांट करनी पड़ी थी, कई बार उठ कर वह कमरे में टहला था—क्योंकि उसे एक प्रसिद्ध नेता के कुछ शब्द याद नहीं आ रहे थे— फिर भी उसने निश्चय किया था, वह किसी भी पत्रिका या किसी भी पुस्तक की जरा भी मदद नहीं लेगा। उसने अपने इस व्रत का पूरा पालन किया। परिणाम यह हुआ कि लेख लम्बा नहीं बन सका, परन्तु उसे संतोष था। वह लेख उसका अपना था, भले ही वह सुन्दर न हो।

उसने एक बात और की। उस लेख को लिख कर किसी को नहीं दिखाया। सीधे एक पत्र के संपादक के पास भेज दिया।

एक-दो-पांच ! पूरे सात दिन बीत गये। वह रोज डाक देखता था, परन्तु उसे सम्पादक की चिट्ठी नहीं मिलती थी। वह बार बार पोस्टमैन से पूछता--

"कोई पत्र और भी है ?"

उत्तर मिलता-- "जी नहीं !"

दिन फिर बीते-- आठ, नौ, दस, पन्द्रह......

पोस्टमैन ने उसे ठीक पन्द्रहवें दिन एक पत्र दिया, जो दूध के समान सफेद और घी के समान चिकना था। उसने अचरज से उसे देखा--"यह तो सम्पादक का पत्र है !" वह चौंक कर बोल उठा।

"सम्पादक का पत्र ! सम्पादक का पत्र !! कान्त तुम्हारे नाम सम्पादक का पत्र !

धुन्ध उमड़ी और आंखों में छा गई। पत्र एक बार में पढ़ा नहीं गया। फिर कोशिश की, लिखा था--

"प्रिय महोदय !

"आपका लेख मिला। हम चाहते हैं उसमें कुछ संशोधन करके रजत जयन्ती के अवसर पर निकलने वाले अपने विशेषांक में छापें। विलम्ब तो होगा, पर लेख उसी अवसर के योग्य है।

भवदीय

सम्पादक"

"छापना चाहते हैं ! रजत-जयन्ती के अवसर पर...! मेरा लेख रजत-जयन्ती अक में छपेगा !" उसे जैसे विश्वास नहीं हो रहा था। वह तब दफ्तर में अपनी कुरसी पर बैठा था। उसके चारों ओर शोर मचा हुआ था, क्योंकि वह वेतन बांटने का दिन था। लोग एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते थे

और नाटा एकाउन्टेन्ट उन्हें बुरी तरह डपट रहा था। कान्त शीघ्रता से उठा और उसके पास पहुँचा—"लाइये! मैं कुछ आपकी मदद कर सकता हूँ?"

एकाउन्टेन्ट गद्गद् हुआ—"ओह शुक्रिया! मिस्टर कान्त! तुम बड़े अच्छे हो।"

कान्त ने मन में कहा—"अच्छा तो हूँ ही। मेरा लेख जो पत्रिका में छपेगा! वह भी विशेषांक में!"

एकाउन्टेन्ट कह रहा था—"देखो तो इन लोगों को! जरा सब्र नहीं है। पैसे का मामला है। कम हो गये तो इनके बाप का क्या जायेगा?"

कान्त ने कहा—"आप पैसे संभालिये, मैं अँगूठे लगवाता हूँ।"

"हाँ, हाँ! यह ठीक है। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।"

कान्त ने रजिस्टर उठाया और पुकारा—"रमजान, बुद्धू, लाला, मगँलू गोपी, चलो! एक एक करके चलो, हाँ......।"

वे लोग नाम सुन कर ऐसे टूटे जैसे बरसात में टिड्डे बल्ब पर टूटते हैं।

× × ×

घर लौटा। मन खुशी से भर रहा था। सामने चन्द्र आ गया। और दिन दोनों एक दूसरे से कन्नी काट कर निकल जाते थे, पर आज कान्त हँस पड़ा। चन्द्र ने उसे देखा, वह मुस्कराया। बोला—"बड़ी हँसी आती है!"

कान्त सहसा नम्र हुआ—"चन्द्र!"

"कहो!"

"उस दिन के लिये लज्जित हूँ।"

चन्द्र मुस्कराया—"तुम भी बड़े वैसे निकले! जरा सी बात का बुरा मान गये!"

कान्त बोला—"तुमने कहा ही ऐसे था। अब देखो यह पत्र!"

चन्द्र ने पत्र ले लिये। पढ़ा और नम्र स्वर में बोला—"मैं जानता हूँ, कान्त! तुम एक दिन बड़े आदमी होगे। वह तो मज़ाक की बात थी।"

विष्णु

"नहीं चन्द्र ! उस दिन वास्तव में तुम्हारी बात में बहुत कुछ सचाई थी। यद्यपि मैं ऐसा करना नहीं चाहता था और जान बूझ कर किया भी नहीं था, फिर भी वह कहानी मेरी नहीं थी।"

चन्द्र ने शान्त स्वर में कहा—"कान्त ! शुरू में ऐसा ही होता है। माँ के पेट से सीख कर कौन निकलता है ? तुम मेहनती हो, प्रतिभाशाली हो। आज नहीं तो कल ! एक दिन चमकोगे। तब हम भी कह सकेंगे—हमारा भी एक साथी है, जिसकी दुनिया पूजा करती है......।"

कहते कहते चन्द्र के मुख पर स्निग्धता उभर आई। उसने कान्त को प्रेम भरी दृष्टि से देखा कान्त का मन खुशी से भर उठा। यद्यपि ऊपर से वह लजा गया था, परन्तु अन्दर उसे बहुत सुख पहुँचा और ढाढ़स भी, जो भविष्य की मादक कल्पनाओं से भरपूर था।

अन्तर्वेदना

●

अचानक जिस दिन सहस्रधारा जाने का प्रोग्राम था उसी दिन शैलेन्द्र को ज्वर आ गया। कान्त बोला— कल चलेगें। लेकिन कई कल आए और गए, पर शैलेन्द्र का ज्वर नहीं उतरा। जब उतरा तो उसमें जाने की शक्ति नहीं रह गई थी। कान्त की प्रफुल्लता फिर विषाद में पलटने लगी। यही देख कर एक दिन बुआ बोली— नौकर को लेकर तुम हो आओ बेटा! इसे तो अभी कई दिन लगेंगे।

शैलेन्द्र ने समर्थन किया— हां! यह ठीक रहेगा, भइया। हो सका तो मसूरी से लौट कर एक बार फिर साथ साथ चलेगें।

कान्त यही चाहता था। उसे लग रहा था कि उसे एकान्त चाहिये। मन ही मन प्रसन्न होकर उसने कहा— अच्छा बुआ जी! हम कल जायेंगे।

और अगले दिन बहुत सबेरे ही तैयार होकर वह अपनी यात्रा पर चल पड़ा। नौकर ने कुछ कपड़े, बिस्तरा और खाने का सामान ले लिया था।

चलते समय उसने शैलेन्द्र से कहा— शैलेन्द्र, अगर मैं रात को न लौट सका तो चिन्ता मत करना। मैं वहां ठहरना चाहता हूं।

शैलेन्द्र अचकचाया- पर भइया......।

कोई चिन्ता नहीं। हाँ अभी बुआ जी से मत कहना। समझे।

और मोटर में बैठ कर राजपुर आये। वहां से पैदल रास्ता जाता था। यद्यपि आसमान हल्के बादलों से आच्छादित था तो भी सूरज धरती को प्रकाश से भरता हुआ शान्त गति से आगे बढ़ रहा था। कान्त नीचे उतरने लगा। उसने देखा— चारों ओर पहाड़ है, ऊँचे-नीचे, हरे और मटमैले। कहीं दरख्तों की घनी छाया है. कहीं छोटा-सा सुन्दर मैदान. जिसके किनारे बने हुये

विष्णु

एक दो मकान उसे दुनियां की याद दिला देते हैं। उसके पास से कई टट्टू खड़ खड़ करते हुये निकल गये। वह कांप उठा— यदि पैर फिसला तो....। तो नीचे मृत्यु की समाधि है, जो जीवन से तनिक भी सम्बन्ध नहीं रखती। वह आहिस्ता आहिस्ता उतरने लगा। फिर सहसा न जाने क्या हुआ, वह तेजी से दौड़ा और नीचे के मोड़ पर जाकर दम लिया।

नीचे घाटी में पहाड़ी नदी का विशाल पाट था। पर आज वह एक पतली धारा के रूप में पत्थरों से टकराती हुई बह रही थी। उसमें पानी भरती हुई युवतियां मुड़ कर उसे देखने लगीं। उन्हें देख कर उसने सोचा— दिल्ली की दुनियां उनसे कितनी दूर है ?

वह और आगे बढ़ा. प्रकृति और सुन्दर रूप में सामने आई। एक संकरे मार्ग पर, जो दोनों ओर खुशबूदार पेड़ पौधों से घिरा हुआ था, उसकी आत्मा एक गहरी मिठास से भर उठी। उसने फिर छोटे छोटे पहाड़ी खेतों को देखा, जो दूर से पहाड़ियों की तरह मालूम दे रहे थे। वह फिर चढ़ा और उतरा और उन दूकानों के पास जा निकला, जो बड़े बड़े ताजे खीरों और दूसरी खाने पीने की चीजों से भरी हुई थीं। वह अब मंजिल पर आ पहुँचा था। उसने सुख की सांस ली और उसका हृदय खुशी से भर उठा। उसके सामने कल कल, छल छल करती हुई पहाड़ी नदी थी, जिसका जल पत्थरों से टकराता, शोर मचाता और नाचता हुआ आगे बढ़ रहा था। उस नदी के एक किनारे पर धर्मशाला थी। उसी के ठीक सामने पुल पार करके सहस्रधारा की काली गुफा दिखाई दे रही थी, जिसकी छाती को चीर कर पानी की असंख्य बूंदें टपक रही थीं मानों कोई शापग्रस्त वरुण वहाँ आ बसा है और यक्ष के समान अपनी प्रियतमा के विरह में मौन रुदन कर रहा है। यह विधाता का वैचित्र्य है कि देवता का रुदन आदमी के रुदन को शान्त करता है। और यही नहीं, अनजाने ही उन अनन्त वर्षों में शाप-ग्रस्त देवता के आंसुओं ने उन बेजान पत्थरों को कला के अनेक रूपों में पलट दिया था।

कान्त धर्मशाला की ओर न जाकर पहिले पुल पर मुड़ गया । एक छोटा बच्चा शान्त मन नदी की ओर देख रहा था । कान्त को देख कर बोला—तुम कहां जा रहे हो ?

उधर ।

हम भी चलेंगे ।

न जाने किसका बच्चा था, प्यारा और सुन्दर । बच्चे सभी सुन्दर लगते हैं— उसने सोचा और मुस्करा कर आगे बढ़ गया । गुफा में जल भरा था । फर्श पर काई जम गई थी और शरीर ठण्ड के कारण कांप-कांप उठता था, पर मन ! वह कहता था— स्वर्ग, यही है ।

नीचे से गहरी आवाज उठती थी— कल कल, छल छल...।

दूर कहीं से बादल उठते थे और परछाई फेंकते हुए निकल जाते थे और यात्री खुशी से चिल्ला कर प्रतिध्वनि पैदा करते थे । निशिकान्त देर तक मुग्ध-मन से उन बादलों को निहारता रहा, पर जब शरीर का कम्पन मन में उलझन पैदा करने लगा तो लौट चला । वह बच्चा अभी वहीं खड़ा था । उसे कांपते देख कर हँस पड़ा । वह भी हँसा और धर्मशाला में आकर कपड़े बदलने लगा । उसके आस-पास काफी यात्री बिखरे पड़े थे, कुछ स्नान करके लौट रहे थे, कुछ खाने-पीने की व्यवस्था कर रहे थे और कुछ खेल रहे थे ताश या कैरम । उनमें युवक थे, युवतियां थीं, कुछ बालक और वृद्ध भी थे ।

उसके पास ही नीचे एक परिवार भोजन बनाने की व्यवस्था कर रहा था। एक युवती, जिसकी मांग में सिन्दूर था, आटा गूंथ रही थी और दूसरी आग जलाने में व्यस्त थी । कान्त ने देखा— वह युवती अपने में सिकुड़ी हुई नहीं है परन्तु उसका रंग बेहद काला है और नाक कुछ छोटी है । आंखें......तभी सहसा निरीक्षण रोक देना पड़ा । युवती ने मुड़ कर आशंकित स्वर में पूछा—

भाभी ! राजेश कहां है ?

राजेश ! यहीं तो था ।

विष्णु

अब तो नहीं है।

वह शीघ्रता से उठी। नदी की ओर जाकर जोर से पुकारा— राजेश, ओ राजेश!

कोई नहीं बोला। घबरा कर वह दूसरी ओर मुड़ी। तभी सहसा कान्त को कुछ याद आगया।

पुल की ओर दिखा कर बोला— वह तो नहीं है।

जी हां......।

बैठिये! मैं ले आता हूँ।

कहकर वह शीघ्रता से आगे बढ़ गया और पांच मिनट में बच्चे को लेकर लौट भी आया। फिर जैसे कुछ नहीं हुआ, गन्धक के सोते की ओर चला गया। वह सोता कहां से निकलता है, कोई नहीं जानता परन्तु प्रति दिन अनेक नर-नारी दूर दूर से उसका पानी पीने आते हैं और वह छोटी सी नाली के रूप में बहता हुआ अब तक न जाने कितने लक्ष-लक्ष नर नारियों की प्यास बुझा चुका है.........।

कान्त उसी के पास बैठकर देर तक नहाता और पानी पीता रहा। जब थक गया तो ऊपर लौट आया। नौकर आ गया था और सामान ठीक कर रहा था। उसने देखा— उसी के पास बैठा हुआ एक नवयुवक अखबार पढ़ रहा है। उसे देख कर वह बोला— अखबार आपका है?

जी।

पढ़ सकता हूँ?

बड़े शौक से।

धन्यवाद। कई दिन से कोई समाचार पत्र नहीं मिला था।

वही नहीं, उसके पास वह श्यामवर्ण युवती 'वीणा' और 'हंस' आदि मासिक पत्रिकायें खोले बड़े ध्यान से पढ़ रही थी और राजेश कह रहा था— हम तसवीर देखेंगे।

युवती ने धीरे से कहा— उनके हैं, मारेंगे ।

राजेश ने कान्त को देखा और बोला— तुम हमें मारोगे ?

कान्त मुस्कराया— कभी नहीं ।

राजेश फिर बुआ की ओर मुड़ा । कान्त खाने का प्रबन्ध करने लगा। तभी उस युवती ने युवक से कुछ कहा । सुन कर युवक बोला— देखिये भोजन बन रहा है ।

कान्त मुस्कराया— धन्यवाद । मेरे साथ है ।

तो क्या चिन्ता है वह भी खाया जावेगा ।

जी ।

युवक ने युवती की ओर देखा और कहा— चन्द्रा ! आपका भोजन ले लो ।

और फिर कान्त को सम्बोधित करके पूछा— आप देहरादून रहते हैं ?

जी नहीं । मैं दिल्ली रहता हूँ ।

घूमने आये हैं ?

जी हां, और आप ?

जी समझिये घूमने ही आये हैं । वैसे माता जी के हाथों में एक्जिमा है । बताया था— गन्धक के पानी में नहाने से ठीक हो जाता है ।

जी हां, सुना तो है, गन्धक का पानी बड़ा कीमती होता है । यूरोप आदि देशों में तो ऐसे स्थानों पर बड़े बड़े स्वास्थ्य-गृह बन गये हैं, पर हमारा देश है.... ....।

जी हां । इस देश की बदकिस्मती कहिये ।

तभी कान्त ने पूछा— आपकी माता जी कहां हैं ?

वे पिता जी के साथ राजपुर गई हैं । सामान लेकर कल लौटेंगी ।

तो आप कई दिन ठहरेंगे ?

जी हां, और आप ?

मैं तो आज ही लौट जाना चाहता हूँ, बहुत हुआ तो कल तक रुक जाऊंगा। खुश होकर युवक बोला— तो रुकिये न! एक दिन, दो दिन, जैसा आप चाहें। मन में कान्त को बड़ी खुशी हुई, सोचा— दुनियां में आदमियों की भिन्न भिन्न श्रेणियां हैं।

और फिर भोजन विश्राम आदि के बाद दिन का अवसान आ पहुँचा। पहाड़ की चोटियां रंग पलटने लगीं। धीरे धीरे वे गुलाबी, लाल, दूधिया और मटमैली होती गई। अन्त में काले-काले बादल उन पर छा गये, परन्तु सूरज की अन्तिम किरण उन्हें छेद कर अभी भी एक चोटी पर चमक रही थी। वियोग और व्यथा की यह अरुणिमा कान्त को बड़ी प्यारी लगी। वह मुग्ध मन उसे देखता रहा। धीरे धीरे यह दृश्य भी ओझल हो गया और प्रकृति ने ‹ली चादर तान ली। देखा- यात्री सब चले गये हैं और नीचे का मैदान कुहरे में छिपता जा रहा है। उसी को चीर नदी का शोर ऊपर उठ आया है।

सर्दी बढ़ने लगी। वे सब उठ कर अन्दर चले गये, परन्तु कान्त वहीं खड़ा रहा। उसने चादर डाल ली थी और तन्मय होकर कुहरे और बादलों में आच्छादित इस नई दुनियां को देख रहा था। उसी समय पीछे से आकर चन्द्रा बोली— दृश्य देख रहे हैं?

वह मुस्कराया— जी हां! मैं प्रकृति रानी को देख रहा हूँ।

सुन्दर है न?

मनोरम!

चन्द्रा मुस्कराई— और डरावनी भी।

कान्त ने धीरे से कहा— डर तो अपने अन्दर है, बहार कहीं नहीं।

चन्द्रा झिझकी नहीं, बोली— बाहर तो कहीं कुछ नहीं है, सब कुछ अन्दर है, परन्तु फिर भी दुनियां बाहर को देख कर ही निर्णय करती है।

तभी तो वह आल-जाल में फँसी है।

और निकलने का कोई रास्ता नहीं।

कान्त मुड़ा। उसने चन्द्रा को ध्यान से देखा। उसके काले मुख पर एक गहरी छाया उभर रही थी। वह छाया विषाद की थी या भय की या वेदना की, यह वह उस अन्धकार में ठीक ठीक समझ न पाया, पर उसका दिल कुछ धक-धक करने लगा था। दृढ़ होकर उसने कहा— रास्ता क्यों नहीं है?

क्या है, बताइये?

उस निर्णय के आगे झुकने से इन्कार कर देना।

चन्द्रा ठिठकी, बोली— वह तो विद्रोह का रास्ता है और विद्रोह में विनाश है।

कान्त ने उसी क्षण उसी तरह कहा— और विनाश में जीवन।

और फिर अपने उस वाक्य को समझाता हुआ बोला— जीवन सदा विनाश के उस पार रहता है। बिना विनाश के हम उसे नहीं पा सकते, यह ध्रुव सत्य है।

युवती जैसे कांपी। तभी दूर, कोई जोर से बोल उठा, एक गूंज पैदा हुई और मिट गई। ऊंचे पहाड़ पर प्रकाश की किरण-रेखा चमक उठी। आकाश के एक कोने से चन्द्रमा ने पृथ्वी की ओर झांका। अन्धकार धुन्धला पड़ने लगा। चन्द्रा बोली— सर्दी बढ़ रही है, अन्दर आ जाओ।

वह चली गई। कान्त को लगा उसकी वाणी भीग रही थी। उसका मन भी भीगने लगा। सोचा— क्या चन्द्रा दुखी है?

हां, दुखी तो है ही। देखते नहीं वह काली है और.........।

वह कांपा। उसने जोर से गरदन को झटका दिया और किसी गीत की एक कड़ी गुनगुनाता हुआ अन्दर चला गया। भोजन तैयार था। वे सब खाने के लिये बैठ गये। खा चुके तो कान्त दूसरी बत्ती जला कर पढ़ने लगा। युवक भी आ बैठा और बिस्तरा लगा कर चन्द्रा ने भी पत्रिका उठा ली। उसकी भाभी मनोज को लेकर लेट गई थी और नौकर सामान ठीक कर रहा था। बाहर सन्नाटा था और किवाड़ों की दराजों से होकर चन्द्रमा का हल्का हल्का प्रकाश

वहां बिखर गया था।........पढ़ते पढ़ते कान्त को लगा— उसके सिर में धीरे धीरे दर्द उठ रहा है। वह पढ़ता रहा पर दर्द नहीं रुका। उसने एक दो बार हाथ से माथे को दबाया पर शान्ति नहीं पड़ी। आखिर पत्रिका बन्द करके वह लेट गया।

युवक ने देखा तो पूछा- सोने लगे ?

हां! कुछ सिर में दर्द है।

सिर में दर्द है तो एस्प्रो की गोली खा लो।

और चन्द्रा से कहा— चन्द्रा! एक गोली लाना।

चन्द्रा उठी। बक्स में से गोली निकाली और कान्त को दे दी। उसे खाकर कान्त ने आँखे मींच ली। वह सो जाना चाहता था पर नींद नहीं आई, उल्टा वह विचारों के गहरे भँवर में जा फँसा। उससे निकलने का कोई रास्ता उसे नहीं सूझा। वह झुंझला उठा, परन्तु उससे क्या हो सकता था ? तब घबरा कर उसने आँखे खोल दीं। देखा— गहन अन्धकार है और सब सोये पड़े हैं।

पर चन्द्रमा !

उसे किसी काले बादल ने ढँक लिया है।

तभी यह विचार मन में उठा- जैसे चन्द्रा को.........।

अपने इस विचार पर वह स्वयं खीझ उठा, लेकिन चन्द्रा उसके मस्तिष्क से नहीं हटी। वह युवती है, पर कुरूपा है और इसीलिये कुँआरी भी।

तभी दूसरा विचार पैदा हो गया— विवाह का सम्बन्ध नारीत्व से है या रूप से ?

उत्तर मिला- नारीत्व से।

फिर।

फिर क्या ? विवाह का सम्बन्ध नारी से है, परन्तु नारी का संबंध रूप से है। मनुष्य सौन्दर्य प्रेमी है। वह नहीं चाहता- कुरूपा नारी के संसर्ग से भावी

विश्व कुरूप बने। सृष्टि से असुन्दरता का मूलोच्छेदन करना उसका एक लक्ष्य है।

तब असुन्दर नारी के नारीत्व की तृप्ति कैसे हो?

इस प्रश्न का एक अजीब हल उसे सूझ पड़ा। उसे सोच कर वह स्वयं कांपने लगा। हल था प्रत्येक असुन्दर नारी को सन्तान उत्पति के अयोग्य बना देना चाहिये।

लेकिन सन्तान स्त्री का जीवन है, सन्तान का छीनना स्त्री की हत्या करना है।

है, परन्तु सृष्टि की उन्नति के लिये ऐसे बलिदान आवश्यक हैं?

अपने इस अद्भुत प्रश्नोत्तर पर उसे फिर झुंझलाहट आने लगी। एक बार तो वह अस्फुट स्वर में बड़बड़ाया भी और तभी उसे लगा— एक भीनी भीनी गन्ध उसके पास आ रही है। वह चौंका.........। एक मादक स्पर्श उसके मस्तक में से होकर सारे शरीर को कपाता हुआ चला गया। वह थर्रा उठा— कोई धीरे धीरे उसका माथा सहला रहा था......। कौन......?

स्पर्श में मादकता थी। सिहरन थी............।

चन्द्रा.........।

उसका हृदय तीव्र गति से धक धक करने लगा। उसका मस्तिष्क तेजी से घूमा। उसने चाहा वह उस हाथ को झटक कर दूर कर दे, पर हिल नहीं सका। उसी तरह चुपचाप लेटा रहा और चन्द्रा मस्तक दबाती रही, दबाती रही —..........।

वह रस का सागर था, पर उसे लगा— वह रस खौलते हुये पानी की तरह जल रहा है और उसकी आत्मा झुलस उठी है............।

पर चन्द्रा नारी है और वह पुरुष.........।

पर.........।

उसे लगा उसी तरह का एक और स्पर्श उसके दिल से उठता हुआ

मस्तिष्क की ओर जा रहा है। क्षण भर में आंखों में जीवन लौटा। ठण्डा ठण्डा स्पर्श.........।

चन्द्रा दोनों हाथों से माथा दबाने लगी थी। उसका दर्द कम हो रहा था। उसे सुख पहुँच रहा था.........।

पर यह तो पाप है, लेकिन सुख क्या है? पाप सुख क्यों है...... ?

गन्ध और पास आने लगी। नारी की गन्ध, वासना की गन्ध। सहसा वह तिलमिला कर उठा। उसका लिहाफ उतार कर फेंक दिया और उठ कर बैठ गया। वह बेहद कांप रहा था। उसके चारों ओर गहन अन्धकार था और............।

और उसकी गोदी में आ पड़ी थी चन्द्रा कांपती और सिसकती हुई। वह क्या करे? क्या करे अब.........? क्या वह इस वेदना को सह सकेगा। उसका हृदय फट रहा है। उसकी आत्मा झुलस रही है। वह सकपकाया, घबराया, एकदम खड़ा हो गया। तभी धम्म से एक हल्की आवाज हुई। तभी किसी ने पुकारा— कौन ?

उसके काटो तो खून नहीं। वह सांस रोक कर जहां खड़ा था वहीं खड़ा रहा। कमरे में बिलकुल शब्द नहीं था। बाहर नदी पत्थरों से टकराती हुई बह रही थी। वह लेट गया और उसने शीघ्रता से अपने आप को लिहाफ में छिपा लिया जैसे कछुआ अपने अंगों को खोल में समेट लेता है। उसे फिर पता नहीं लगा चन्द्रा का क्या हुआ।

× × ×

निशिकान्त जब सबेरे उठा तो प्रकाश फैल चुका था और सारा वातावरण कोहरे से ढँका हुआ था। ऐसा लगता था— सब संसार धुंधमय है, न कहीं जल है, न थल, न मार्ग, न मंजिल! यद्यपि वह रात भर नहीं सो सका था, उसका मस्तिष्क और उसका हृदय दोनों बुरी तरह त्रस्त थे। फिर भी वह वातावरण की शांन्ति से अछूता नहीं रहा। वह रात की बात भूलने की चेष्टा

करने लगा, पर तभी उसने देखा— सामने चन्द्रा है। वह सदा की तरह काम में व्यस्त है पर उसकी वेदना से भरी दृष्टि, उसकी थकी हुई गति......। वह कांप उठा और उसने उस युवक से कहा— मैं अब जाना चाहता हूँ।

अभी?

जी।

उसकी पत्नी बोली— अभी क्या? एक-दो दिन और ठहरिये।

वह बोला— जी तो चाहता था कि कई दिन रहूँ पर पीछे भाई को बीमार छोड़ आया हूँ। इसीलिए जाना ही होगा।

इस बात का किसी ने विरोध नहीं किया। भाई बीमार है तो जाना ही ठीक है। उसने नौकर को सामान बांधने के लिये कहा और स्वयं घूमने चल पड़ा। युवक साथ था और वे दोनों धीरे धीरे पत्थरों पर पैर रखते हुये पहाड़ी रास्ते पर आगे बढ़ रहे थे। साथ ही साथ वे तेजी से बातें करते जाते थे जिनका विषय प्रकृति की सुन्दरता से लेकर कांग्रेस की वर्तमान गतिविधि तक था। वह अब सात प्रान्तों में शासन चला रही थी और देश में एक नयी चेतना का जन्म हो रहा था। युवक ने कहा- ठीक है। अब हमारे दिन लौटे हैं। हमने उनके लिये कम बलिदान नहीं किये थे।

कान्त बोला- जी हां। बलिदान से आजादी मिलती है। आप लोगों ने.........।

बात काट कर वह बोला— हम लोगों का क्या है? असल में तो हम लोगों की नारियों ने अपना जीवन देकर आजादी जीती है।

और फिर निशिकान्त की ओर मुड़ कर कहा— चन्द्रा दो बार जेल हो आई है। कान्त चौंका— जी।

जी हां, दो बार हो आई है। सन् तीस में और फिर सन् बत्तीस में। बड़ा सुन्दर भाषण देती है।

शादी नहीं की अभी?

जी शादी ! क्या बताऊँ लड़का नहीं मिलता। इतनी योग्य लड़की है पर फिर सहसा निशिकान्त को देख कर कहा— आप ही उधर कोई लड़का बता सकें तो बड़ी कृपा होगी।

कान्त मुस्कराया— मैं.........!

जी हां। आप देखते हैं— लड़की पढ़ी लिखी है, सुशिक्षित और सच्चरित्र है। जेल हो आई है, पर क्या मज़ाल कोई उंगली उठा सके। सभी कहते हैं बा० राधामोहन की लड़की चन्द्रा, देवी है।

कान्त के दिल में दर्द उठा। उसने धीरे से कहा— देखिये, कोशिश करूंगा।

जी हां। जरूर करिये, हम लोग वैश्य हैं और देखिये पैसा हमारे पास बहुत तो नहीं है, पर कंगाल भी नहीं है। छोटी मोटी सेवा कर ही सकते हैं। और फिर धर्मशाला की ओर मुड़ते मुड़ते कहा— आपकी शादी हो गई ?

मेरी ?

जी !

नहीं।

नहीं ! क्या कहते हैं ? आप युवक हैं, सुन्दर हैं, सुशिक्षित हैं और कमाते हैं। आपका सुन्दर विचार, आपका विशाल हृदय.........।

बात काट कर कान्त हँसते हुये बोला— जी बात यह है मैंने अभी विवाह करने का विचार ही नहीं किया।

युवक भी हँसा— मैं जानतां हूं, लड़की पसन्द नहीं आई है। वास्तव में लड़की चुनना बड़ा कठिन है। चन्द्रा को ही लीजिये ऊपर से.........।

कान्त की छाती के भीतर धक से हुआ और बात को आगे बढ़ने से रोकने की इच्छा से वह तेजी से पत्थर पर दौड़ता हुआ एक विशाल प्रस्तर खण्ड पर जा चढ़ा। वह ठीक धर्मशाला के सामने था और वहीं से वह चन्द्रा, उसकी भाभी और मनोज को साथ साथ देख सकता था। चन्द्रा मनोज को

उछाल रही थी और भाभी स्वेटर बुन रही थीं। साथ ही साथ वे बातें करती और हँसती जाती थी। कान्त ने देखा और सोचा— रात की बात.........।

उसका मन फिर विषाद से भर उठा। उसने शीघ्रता से कहा— मुझे जल्दी करनी चाहिये। दोपहर तक घर पहुँच जाना ठीक होगा।

और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह इतनी तेजी से आगे बढ़ा कि युवक को उसका साथ देने में कष्ट होने लगा।

× × ×

नौकर ने सामान उठा लिया और चल पड़ा। कान्त अपने साथियों से विदा लेने के लिये पीछे रह गया। युवक से हाथ मिला कर उसने कहा— आप की कृपा मैं सदा याद रखूंगा!

युवक मुस्कराया— कृपा क्या है, आप.........।

उत्तर बिना सुने वह भाभी की ओर मुड़ा; बोला— नमस्ते भाभी जी, जा रहा हूँ। भाग्य ने मिलाया तो फिर कभी आपके हाथ की रोटियाँ खाने आऊँगा! फिर मनोज को गोदी में उठा लिया। जेबों में जितनी मेवा भरी थी सब उसकी झोली में उड़ेल दी। दो तीन बार नीचे ऊपर उछाला और फिर कहा— हमें भूलोगे तो नहीं मनोज। दिल्ली आओगे।

मनोज ने गम्भीरता से गरदन हिला कर कहा— आयेंगे।

और फिर मेवा सम्भालने में व्यस्त हो गया। कान्त ने उसे चन्द्रा को दे दिया। बोला— नमस्ते।

तभी लगा वह चन्द्रा से बहुत कुछ कहना चाहता है, पर वह कुछ कह न सका। एक बार फिर हाथ जोड़ कर नमस्ते किया और शीघ्रता से आगे बढ़ गया। तभी युवक ने पीछे से पुकार कर कहा— अरे ठहरिये।

वह ठिठका— जी।

आपकी पत्रिकायें रह गईं।

तो रहने दीजिये।

जी, लेते जाइये न !

अजी रहने दीजिये, आप पढ़ियेगा ।

और मुड़ कर वह चबूतरे से नीचे उतर गया । युवक पत्रिकायें लिये खड़ा ही रह गया । उधर कान्त जैसे ही ऊपर से आते हुए झरनों को पार करता हुआ पहले मोड़ पर आया उसने बच्चे की खिलखिलाहट सुनी । वह चौंका । उसने आंख उठा कर देखा— दाहिनी ओर झरने के पास एक शिला-खण्ड पर चन्द्रा खड़ी है । उसकी गोदी में मनोज है और वह हाथ फैला कर उसके पास आना चाहता है ।

कान्त मुस्कराया— आओगे !

चन्द्रा मुस्कराई— जाओ ।

सहसा कान्त ने चन्द्रा को आंखों भर देखा । वह सिहर उठा । उस मुसकान के पीछे वेदना का गहरा सागर छलछला रहा था । उसका दिल टीसने लगा । क्या वह इस लड़की के लिये कुछ नहीं कर सकता । कुछ भी नहीं...।

इस टीस के बावजूद भी वह तेजी से आगे बढ़ रहा था, परन्तु आँखें फिर पीछे लौटीं । देखा— चन्द्रा इंगित से मनोज को उसी की ओर दिखा रही है । उसकी आंखें आसुओं से पूर्ण हैं, जो उसके काले गालों से होकर नीचे झरने में टपक रहे हैं । मनोज हँस रहा है...   ...।

कान्त के आगे नाला था । वह तेजी से कूदा और लपक कर दूकानों की ओर मुड़ गया ।

वहीं चबूतरे पर उसका नौकर सामान लिये बैठा था । उसके पास बैठ कर उसने थैले से कागज निकाला और लिखने लगा । तब उसका शरीर काप रहा था और हाथ तेजी से शब्दों को पीछे छोड़ता हुआ आगे बढ़ रहा था । उसने लिखा—

"मानता हूँ कि नारी का अस्तित्व नारीत्व के कारण है, पर रात जो कुछ हुआ वह कायरता थी । मेरी और तुम्हारी दोनों की । कायरता पाप है । जो

चाहती हो खुल कर मांगो ! नहीं मिलता, उसके लिये लड़ो। लड़ते लड़ते प्राप्त करो या नष्ट हो जाओ। दोनों स्थिति एक दूसरे से बढ़ कर है, पर किसी भी हालत में अपने को मारना बुरा है, इसीलिये पाप है........।

—कान्त

लिख चुका तो नौकर से कहा— नाले के उस पार मनोज को लिये चन्द्रा खड़ी है, उसे यह पत्र दे आओ।

रहस्य

●

धीरे धीरे कान्त ने आंखें खोली। यद्यपि उसका बदन अभी तक दर्द कर रहा था तो भी उसका मन बहुत शान्त था। वह महसूस कर रहा था जैसे उसका जीवन लौट आया है और उसे मरने का कोई डर नहीं है। शान्त क्षणों में कान्त मृत्यु से बिल्कुल नहीं डरता। वह मानता है, जीवन से बढ़ कर मौत मनुष्य की शुभचिन्तिका है, परन्तु अशान्ति में बहुत कम मनुष्य ऐसे हैं, जो शान्त क्षणों की मान्यता पर विश्वास रख पाते हैं। कान्त भी नहीं रख पाया, परन्तु उसके हक में एक बात थी और वह बात काफी वजन रखती थी। वह बीमार था ऐसा कि क्षण-क्षण में मौत की डरावनी सूरत उसके सामने नाचने लगती थी और उस वक्त उसके पास सहानुभूति के दो शब्द कहनेवाला भी कोई नहीं था। केवल उसका छोटा भाई था जो उससे भी अधिक डरा हुआ था और सच तो यह है उसका डर ही कान्त का एक मात्र ढाढ़स था। अगर वह न होता तो वह एक बार दिल खोल कर खूब रोता, उसके बाद फिर चाहे कुछ हुआ होता ; चाहे उसके प्राण तक चले गये होते। पर छोटा भाई है, उसे विकल देख कर बहुत दुखी होगा— यही एक बात उसके दिमाग से नहीं निकली थी।

वैसे पड़ौस में सब जानते थे, कान्त बीमार है। कुछ आकर हाल-चाल पूछ जाते हैं। एक प्रेमी सज्जन कभी-कभी बाजार का काम करने को भी तैयार थे, परन्तु काम कैसे कराया जाता है कान्त ने यह नहीं सीखा। वस्तुतः वह लोगों से बहुत कम मिलता था और इसीलिये, जैसा होता है, वे लोग भी उसके पास बहुत कम आते थे। जो आते थे वे दूर के थे और उनके पास आने का कोई न कोई कारण होता था, परन्तु आज जैसे ही उसने आँखें खोली, उसने देखा— उसके मकान के सामने रहने वाली वृद्धा उसके सामने खड़ी है।

उसे जागते देख वह हमदर्दी से भर कर बोली– कहो बेटा ! कैसी तबियत है ? और कहते-कहते पास आकर कान्त का माथा देखा, फिर हाथ देखा और बोली– ना बेटा ! तुझे तो अभी बुखार है ।

कान्त ने धीरे से कहा– पहिले से कम है, चाची।

चाची बोली– तू माँ को क्यों नहीं बुला लेता ? क्या कर रही है वहाँ ? ना बाबा पत्थर का हिया है उसका । इतनी बीमारी और पास कोई नहीं। वैसे ही डर लगता है।

कान्त कष्ट में भी मुस्कराया, कहा– चाची ! डर क्या है ?

ना बेटा ! डर तो लगता ही है । अपने किस दिन के लिये होते हैं ? चिट्ठी लिखी है ?

जी हाँ।

मेरी जान में तो तार देना चाहिये था । शाम तक आ जाती । अपना अपना ही होता है । दूसरे क्या कर सकते हैं; आये हाल पूछ गये । किसे पड़ी है जो अपना घर छोड़ कर दूसरे के पड़ेगा !

जी......!

मैं झूठ नहीं कहती, घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं । सब अपने को चाहते हैं।

कान्त का मन बोलने को नहीं कह रहा था, पर वह मना भी नही कर सकता था। उसने धीरे से कहा– जी आप सच कहती हैं।

चाची मुस्कराई, बोली– कोई बात हो तो मुझे कह देना । बूढ़ी हूँ, वहाँ न पड़ी, यहाँ पड़ रही। सच जानना तेरी बात सोच-सोच कर जी को बड़ा दुख होता है। इतना बड़ा हो गया अकेला पड़ा रहता है। विवाह भी तो नहीं किया। अपनी बहू होती तो दस काम करती।

कान्त ने कोई जवाब नहीं दिया । मुस्करा कर रह गया । चाची कहती रही– दुनिया है न जाने क्या-क्या सोचती है ?

और फिर एक दम विश्वस्त की भाँति नीचे झुक कर धीरे से कहा– कल मोहनकृष्ण की बहू आई थी ?

हाँ।

क्यों ?

वैसे ही पता लगा होगा, हाल पूछने चली आई।

ना भइया ! तू समझदार है। देख भाल कर काम करना चाहिये। किस-किस की जबान पकड़ी जाती है ! रमेश की माँ कह रही थी– 'कल कांत के पास मोहनकृष्ण की बहू आई थी, रात बीते ई। मुझे तो बुरा लगा सुन कर।

कान्त पर इस बात का कोई विशेष असर नहीं हुआ। वह जानता था, वे क्या कहना चाहती हैं। इसलिये सुन कर उसने इतना ही कहा– चाची ! मैंने उसे कई बार पढ़ाया है। मोहन मेरा मित्र था उसी के नाते आई थी। मैंने नहीं बुलाया। अब आयेगी तो मना कर दूँगा।

चाची शीघ्रता से बोली– मैं जानती हूँ ! उस पर विपता क्या कम पड़ी है, पर औरत औरत है। सफेद चादर पर लगा दाग क्या छिपता है ? और फिर दस मुँह की दस बातें। अपने को बचा कर रखना चाहिये भइया ! तेरी सब तारीफ करे हैं– लड़का सोने का है ! और ऐसा क्या काम है ? मैं कर दूँगी, देवी है और माँ को तार दे दें फिर कब काम आयेगी ? और सौ बातों की एक बात– विवाह करले। अपनी लुगाई जितनी मोहब्बत करती है, जितना उस पर जोर होता है, उतना और किस पर हो सकता है !

और चाची उठी। जाते जाते बोली– तेरे भइया को भेजूं क्या ?

कान्त ने धीरे से कहा– नहीं चाची ! देवी है, दवा ले आयेगा। तबियत मेरी सुधर रही है।

चाची चली गई, कुछ देर बाद देवी भी स्कूल चला गया। वह फिर अकेला रह गया। उसे लग रहा था उसका ज्वर धीरे-धीरे फिर बढ़ रहा है।

उसे पाँच छ दिन से बुखार आ रहा था, साथ ही पेट में पीड़ा थी। वह समझता था- जैसा कि सदा होता है आठ दस दिन में सब ठीक हो जायेगा; परन्तु इस बार ऐसा हुआ कि रोग घटने के बजाय बढ़ने लगा। परसों रात उसके पेट में इतना दर्द उठा कि वह तड़प उठा। उसने देर तक पेट को दाबा, दवा खाई पर, शान्ति नहीं पड़ी। देवी को जगाया, कहा- 'आग जलाकर मेरा पेट सेंक दे।' परन्तु आग जले-जले उसे कै-दस्त शुरू हो गये! वह कांप उठा- 'क्या होगा अब? देवी भी घबराया। बेचारा कभी माथा थामता, कभी पानी लाता और कान्त.........।

हठात् कान्त को कुछ याद आया, बोला- 'प्याज होगा। उसका अर्क ले आ।' देवी नीचे दौड़ा और कान्त साँस लेने को रुका। उसने छाती को जोर से दबा लिया और आँखें बन्द करके लेट गया। सघन, निस्तब्ध रात्रि; रोग का भयानक प्रकोप और माँ की अनुपस्थिति! कान्त का हृदय फटने लगा; वह रो पड़ा। क्या होगा.........? और उबकाई फिर आई; पर तभी देवी ने हाथ में प्याली लिये वहाँ प्रवेश किया। कान्त एक साँस में सब अर्क पी गया। क्षण बीते जैसे प्राण लौटे, छाती बँधी। वह फिर नेत्र मूँदकर लेट गया और दूसरे ही क्षण उसे लगा- उसका बदन तवे की तरह तप रहा है.........।

वह रात धीरे-धीरे बीत गई। प्रभात सदा की भाँति आया; दुनिया जागी और काम में लगी। कान्त उसी तरह शिथिल संज्ञाहीन पड़ा रहा। न उसे दिन का ज्ञान था, न रात का। उसे यह भी पता नहीं था कि वह है भी या नहीं। धूम्राच्छादित-स्वप्निल-माया प्रदेशों की तरह कुछ चित्र उसके सामने उठते थे और वह आँखें फाड़-फाड़ कर देखता था- जैसे कुछ खोजना चाहता हो, पर क्या? यह वह स्वयं ही नहीं जानता था! वास्तव में वह न सोता था, न जागता था। वह गहरी मूर्च्छना में था। उसी मूर्च्छना में उसे लगा जैसे भयानक अंधेरी रात बीत रही है, प्रभात की सुनहरी किरणें धरती को मुखरित करती हुई चारों ओर फैल गई हैं, प्रकाश मन्द-मन्द मन्थर गति से मुस्कराता

हुआ आ पहुँचा है। वायु की हल्की लहरें मदहोशी का गीत गाने लगी हैं और उसके अंग-अंग में जैसे प्राण लौट रहे हैं— जैसे मीठी मादकता, उसे कँपाती हुई उसके रक्त के साथ नाड़ियों में फैल रही है……! वह कांपा— यह क्या है ? यह मादक सिहरन, यह प्राणदायक स्पर्श, मीठा और प्यारा जैसे वह जीवन-सरोवर में डूब रहा है, उसके पैर, उसके हाथ, उसकी छाती, उसका मुख, नाक, आँखें, मस्तक सब डूब गये और डूब कर ही जैसे वह जी उठा—…वह फिर कांपा। उस कम्पन में माधुर्य थ ; उसका हृदय आलोड़ित होने लगा। उसे लगा उसका ताप शान्त हो रहा है। उसकी आँखें खुलने लगी हैं और उसका स्वर फूट रहा है— माँ आ……!

आखें खुल गई। उसने देखा, वह अपने कमरे में लेटा है, द्वार खुले हैं और उनसे आकर मनोरम प्रकाश वहाँ बिखर गया है और कोई धीरे-धीरे उसका माथा सहला रहा है। क्या माँ आ गई……आँखें आप-ही-आप ऊपर उठीं और उठ कर रह गई। उसके सामने चिर-परिचित मुखड़ा था— सुन्दर, शान्त और गम्भीर ! वह क्षणभर बोल नहीं सका ; उसे देखता रहा और वह हाथ फेरती रही। केवल एक बार उसका हाथ कांपा ; पर स्थिर होकर वह फिर सहलाने लगी। क्षण-भर बाद जब पहला प्रभाव शान्त हुआ तो कान्त धीरे-धीरे फुसफुसाया— तुम आई हो कमला !

'कैसा जी है ?'

'देख रही हो।'

'कहलाया क्यों नहीं ? इतना गैर समझते थे ?'

कान्त नहीं बोला। कमला ने फिर कहा— 'आज अचानक देवी मिल गया था। पूछने पर उसने बताया। नहीं तो मुझे क्या पता लगता ?'

'जरूरत ही क्या थी ?'

'हाँ ! जरूरत तो कुछ नहीं थी। बात केवल इतनी थी कि मैं तुम्हें दुनिया के दूसरे आदमियों की तरह नहीं समझती थी।'

कान्त जैसे काँपा। उसने आँखें उठाकर देखा और धीरे-धीरे अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया, पर दबाना चाह कर भी दबा न सका। कमला ने कोई विरोध नहीं किया ; बल्कि उसके हाथ पर अपना दूसरा हाथ रखकर दबा दिया और दबाए रही। कान्त उसी तरह लेटा रहा। उसकी आँखें डबडबा आईं ; परन्तु उसने उन्हें पूछने की चेष्टा नहीं की। उस अवस्था में उसे बहुत सुख मिल रहा था और वह उस सुख को खोना नहीं चाहता था। जेठ की तपती दोपहरी में तपे हुए मुसाफिर को शीतलवायु का झोंका जितनी शान्ति देता है या माघ-पूस की जमा देनेवाली शीत में ठिठुरता हुआ मुसाफिर आग को देखकर जो सुख पाता है, वही सुख आज कान्त को मिला था। कंगाल की तरह उस सभी को वह दिल में बटोर लेना चाहता था। कभी-कभी उसे डर लगता था, वह कहीं स्वप्न न हो, वह कहीं मात्र कल्पना ही न साबित हो। उसके हृदय की यह निर्बलता यद्यपि स्थायी नहीं थी; परन्तु रोग के कारण उसकी मेधा-शक्ति क्षीण हो गई थी, इसीलिए वह अस्थिर हो उठा था........।

सहसा जीने में आहट हुई। देवी बाहर से लौट आया। कान्त ने चौंककर अपना हाथ खींच लिया। कमला बिना झिझके उसी तरह शान्त मन बैठी रही। देवी ने आकर शीशी चुपचाप मेज पर रख दी और कहा— 'भइया! डाक्टर ने कहा है, वे एक घण्टे में आयेंगे।' कान्त ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह समझ गया था, डाक्टर बुलाने की सलाह कमला की है।

वह उठी और बोली— 'दवा क्या अभी देनी होगी?'

'नहीं! कहा है, एक खुराक दवा अभी देनी है।'

'और......।'

'और तो कुछ नहीं कहा।'

'तुम्हें स्कूल जाना है?

'जैसा कहो।'

'आज मत जाओ। जरा यहाँ बैठो। मैं नीचे देखती हूँ। दूध ले

आये हो न ?'

'जी हाँ।'

कमला चुपचाप नीचे गई और डाक्टर के आने तक उसने कई बार ऊपर-नीचे चक्कर लगाये। देवी से पूछकर कान्त का बिस्तर बदला, कपड़े बदले। कमरे को धो डाला और फिर देवी के लिये खाना बनाया। घर जैसे चमक उठा और कान्त को लगा जैसे उसका आधा रोग नष्ट हो गया है। उसका मन एक भीगी खुशी से भर उठा। मनुष्य की शक्ति कितनी बोदी है ? सहानुभूति और प्रेम के बिना उसका कोई मूल्य नहीं है। इस दुनिया में कोई उसका है— मात्र यह भावना— यह अपनापन वास्तविक हो उठता है, तो मनुष्य सारी दुनिया को चुनौती देने को तैयार हो जाता है। उसे लगा उसके सब दुख मिट गये हैं और वह दुनिया का सबसे भाग्यशाली और सबसे सुखी मनुष्य है ……। और इसी कमला को लेकर चाची उसे उलाहना देने आई है— "सुन रे बेटा ! उसका यहाँ आना ठीक नहीं है। कल को दुनियां क्या कहेगी ? किसी का मुँह नहीं पकड़ा जाता।" वह जानता था, चाची का क्या मतलब है। मीठी भाषा सत्य की कडुवाहट को दूर नहीं कर सकती। वह कहना चाहती थी— 'कमला दुश्चरित्रा है। उससे सम्पर्क रखना बुरा है। कमला चरित्रहीना है। ये शब्द कान्त के मस्तिष्क में धुआँ बन कर घुट गये। उस धुँए ने उसके दिलको भी कड़ुवा बना दिया। वह फुसफुसाया— क्या कमला सचमुच चरित्रहीना है ? उसने धीरे से करवट बदली और शून्य में ताकने लगा; पर विचार क्या उसे शान्त रहने देते थे ? वे बिना बुलाये आये और बोले— 'तुम जानते हो पहिले-पहल जब तुम कुछ दिन के लिये कमला को पढ़ाने गये थे, वह कितनी भोली और कितनी सच्ची थी ! उसके भोलेपन से तुम कितने आकर्षित हुए थे। तुम ने चाहा था ; तुम सदा उसके पास रहो, पर तुम्हारा स्वप्न उसने एक शब्द में भंग कर दिया था और उसी कमला ने विवाह के बाद आग्रह पूर्वक तुम्हें फिर पढ़ाने के लिये बुला भेजा। तब वह कितनी बदल गई थी ? भोली

बालिका अब एक चंचल परन्तु उदार युवती बन चुकी थी। वह जीवन से खेलना जानती थी; परन्तु यह भी जानती थी कि खेल की एक मर्यादा है। वह तुम्हें प्यार करती थी उसी तरह जिस तरह एक मित्र एक मित्र को और एक बहिन एक भाई को करती है। उसने तुम्हें यह भी बताया था, वह तुम्हें शुरू से ही प्रेम करती थी ·····पर भाग्य की बात, एक दिन शहर में दंगा हुआ और शैतानों ने उसके पति की हत्या कर डाली। वह विधवा हो गई, उसका भाग्य फूट गया। तब तुमने और तुम्हारे साथी चन्द्र ने उसकी कितनी सहायता की! तुम बहुधन्धी थे; परन्तु राजनैतिक कार्यकर्त्ता होने के कारण चन्द्र के पास समय का अभाव नहीं था। लेकिन विपत्ति अकेली नहीं आती। पति के बाद कमला का एक मात्र पुत्र भी चल बसा, फिर सकी सास भी जीवित न रह सकी। कमला अकेली रह गई। संसार उसके लिये शून्य था; पर उस शून्य में दो प्रकाश स्तम्भ थे, जो उसे मार्ग सुझा रहे थे, तुम और चन्द्र। तुमने हृदय को शक्ति दी; पर चन्द्र ने उँगली पकड़ कर राह दिखाई। कमला मर कर भी जी उठी। यही बात दुनिया को खटकी— वह अनाथा है; पर प्रसन्न है, शान्त है, जी रही है आखिर क्यों? क्यों का उत्तर ढूँढ़ना मुश्किल नहीं था। तुम और चन्द्र मौजूद थे। बस, कमला को चरित्रहीना घोषित कर दिया गया। चन्द्र और तुम पुरुष थे, क्षम्य थे पर कमला नारी थी। नारी को क्षमा नहीं मिल सकती; वह आदि शक्ति है, इसीलिये वही समाज के कोप का कारण बनी········।

ये विचार अपनी कहानी इतनी तीव्रता से कह रहे थे कि कान्त अपने-आपको वश में न रख सका। वह उत्तेजित हो उठा, क्रोध से उसका मुँह तमतमा आया। वह फुस-फुसाया— कमला दुश्चरित्रा है, क्योंकि वह विपत्ति में भी हँसती है; क्योंकि वह आपदाओं के सामने नहीं झुकी। उसे याद आया, एक दिन उसीने कमला से कहा था— सुनो कमला! इतने बड़े संसार में हमारा-तुम्हारा मूल्य ही क्या है। तुम रोओगी, दुनिया तुम्हारे आँसू पोछने के लिये नहीं रुकेगी। तब उसके साथ चलने में हमारा कल्याण है। और

जब चलना है तो गर्व से सिर उठाकर चलना चाहिये। 'अच्छी भावना' तुम्हारा एक मात्र अवलम्ब है। उसके रहते हुए किसी भी तरह तुम्हार नाश हो जाता है तो तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। आखिर तुम मर भी गईं, तो दुनिया का क्या बिगड़ जायगा ! वह तो एक अन्तहीन क्रम है।

आज उसे खुशी थी, कमला इस रहस्य को समझ गई थी और इसका कारण थे वे दोनों, कान्त और चन्द्र। विशेष कर चन्द्र, क्योंकि कान्त महसूस करता था, बावजूद सब बातों के उसमें एक प्रकार की झिझक थी और चन्द्र शांत होकर भी जो कुछ करता था, खुले दिल से करता था। कान्त नहीं जानता था कमला किसे अधिक प्रेम करती थी; परन्तु यह वह अवश्य जानता था कि उसका सुख कहाँ है......?

इस विचार के मन में आते ही उसका दिल भर आया, आँखें गीली हो गईं और तभी आँसुओं के कारण धुँधली दृष्टि से उसने देखा— कमला उसके सामने खड़ी है। देखकर वह चौंक पड़ा और चाहा मुस्कराये, पर कमला सीधी उसके सिरहाने आ बैठी और माथे पर हाथ फेरती-फेरती बोली— 'रो रहे हो ?'

'नहीं कमला !'

'तो ये आँसू !'

कान्त ने मुस्करा कर कहा— 'ये आँसू बड़े पवित्र हैं। किसी की वीरता की याद करते समय मेरा हृदय उसको प्रेम देने को उमड़ पड़ा था।'

कमला भी मुस्कराई— 'कौन है वह भाग्यशाली ? शायद चन्द्र।'

'नहीं !'

'तो !'

'बूझो।'

कमला ने शान्तभाव से हँसते हुए कहा— 'तुम्हारे सामने बुद्धि का प्रयोग करूँ, चाह कर भी इतनी स्पर्धा मुझमें पैदा नहीं होती।'

कान्त बोला— 'तो हुआ, मैं तुम्हें कायर बनाता हूँ।'

कायर नहीं, विनीत कहो, कान्त ! और विनीत वही होता है जो शक्तिशाली है।'

'कमला !'

'कहो, कान्त वह भाग्यशाली कौन है ?'

'सुनोगी ?'

'हाँ।'

'तो सुनो, वह तुम हो।'

'कमला काँपी– मैं····· ।'

'हाँ तुम, कमला ! तुम्हारी कहानी याद करते-करते मेरी आँखें भर आई थीं।'

'लेकिन मेरी कहानी याद करने का कारण क्या था ?'

'वह भी बताता हूँ। तुम्हारे आने से पहले सामनेवाली चाची आई थीं, कहती थीं– 'कमला दुश्चरित्रा है। उसे मना कर दो, वह तुम्हारे पास न आवे !'

और कह कर कान्त ने कमला को देखा, वह उसी तरह शान्त भाव से सिर दबा रही थी। क्षण-भर बाद जैसे कुछ हुआ ही नहीं, बोली– 'अब तुम्हारी तबीयत कैसी है ?'

'कल से ठीक है।'

'माँ कब आ रही हैं ?'

'आज सन्ध्या तक आशा है ?'

'तब ठीक है, मैं जा रही हूँ।'

कान्त बड़ी तेजी से चौंका। उसने घबराकर कहा– 'पर कमला ! मैंने तो तुम्हें जाने के लिए नहीं कहा। मैं तो तुम्हें··· ··!'

सहसा कमला ने अपना हाथ कान्त के मुँह पर रख दिया और मुस्कराती हुई बोली– 'आगे कुछ मत कहना कान्त ! तुमने कैसे समझ लिया कि तुम्हारे कह देने पर भी कमला तुम्हारे पास से चली जायगी और फिर हँसकर कहा–

'तुम सदा मेरे मास्टरजी बना रहना चाहते हो, लालची कहीं के। पर सुनो, गुरू गुड़ ही रहे, चेला शक्कर बन गये वाली बात हो गई है। कहते-कहते कमला खिल-खिलाकर हँसी और कान्त को कुछ कहने का अवसर न देकर फिर बोली— 'बात यह है, चन्द्र का पत्र आया था। उसे दो वर्ष की जेल हो गई है।'

कान्त ने चौंक कर कहा— 'दो वर्ष.........।'

'हाँ, दो वर्ष की सख्त कैद की सजा हुई है। लिखा है— तुम जाकर आश्रम सँभाल लो।'

'बस।'

'हाँ। बस इतना ही लिखा है।'

'और तुम जा रही हो।'

'न जाऊँ ?'

कान्त ने फिर कमला की ओर देखा, वह उसी तरह स्थिर थी। उसने कहा— 'अगर मना करूँ तो रुक जाओगी ?'

'कर देखो।'

'कमला !'

कमला ने कहा— 'मास्टरजी ! जिसने इतने दिन तुम्हारे चरणों में शिक्षा पाई है वह क्या इतना बुद्धू रहेगा कि तुम्हें भी न पहचान सके ? तुम मना नहीं कर सकते !'

कान्त धक-से रह गया। उसके सारे जीवन की जमा पूँजी, उसका सारा सत्य, सारा रहस्य क्षण भर में कमला ने खोल कर रख दिया। आज उसके ऊपर का सारा आवरण छिन्न-भिन्न होकर दूर जा पड़ा। वह उस थके हुए यात्री की तरह, जो मंजिल पर आकर देखता है कि वापस लौटने में ही उसका कल्याण है, काँप उठा। उसकी आँखें भर आईं। उसने उन्हें पोंछा नहीं। कमला भी चुपचाप बैठी रही। तनिक शान्त होकर कान्त बोला— 'कमला,

जाओ। जाने में ही तुम्हारा कल्याण है; पर मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, मानोगी ?'

'कहो तो।'

'चन्द्र जब छूट कर आये तो तुम उससे विवाह कर लेना।'

जैसे भूकम्प आ गया, कमरा हिला, छतें हिलीं, वायुमंडल हिला, कह कर कान्त हिला, सुनकर कमला हिली। जब शान्ति हुई तो कमला का हाथ कान्त के माथे पर स्थिर रखा हुआ था और उसकी आँखों से बहती हुई आसुओं की धारा उँगलियों के छिद्रों में से होकर कान्त के आँसुओं में जा मिली थी।

विष्णु

अपरिचित

●

निशिकान्त उसे क्या लेकर समझे; अपमान या वह व्यंगोक्ति, जहाँ प्रेम की चरम मिठास है। वह जानता कुछ भी नहीं तभी प्रश्न उमड़-घुमड़कर प्रश्न पर प्रश्न करता चला जाता है और वह उत्तर दे ही नहीं पाता। उत्तर का पहला शब्द जब उसके मस्तिष्क में आता है तो वह उससे पहले ही एक और प्रश्न कर बैठता है- रजनी ने पहली ही मुलाकात में ऐसा प्रश्न किया क्यों?

और इसी प्रश्न के द्वारा वह मानो रजनी को जानना चाहता है। रजनी चतुर है या मूर्खा! सभ्य है या असभ्य! जीवन की लम्बी दौड़ में वह सहारा देगी या मार्ग का रोड़ा बनकर अटकेगी। मानो इस प्रश्न के एक एक शब्द में रजनी का परिचय दिया है, उसे वह खोजना चाहता है।

रजनी ने पूछा था- आप मुझे जानते हैं? और निशिकान्त ने इसीको जैसे अपमान मान लिया; पर कहा कुछ भी नहीं। यह भी नहीं समझा कि वह कुछ नाराज भी है। अपितु हँसा था और कहा था- मैं तो आप ही नहीं जानता कि मैं तुम्हें जानता हूँ या नहीं; पर जानना जरूर चाहता हूँ।

बात यह थी। निशिकान्त का विवाह परसों ही रजनी के साथ हुआ था और आज वे कुटुम्ब की हुल-हुल ध्वनि से बचकर कहीं एकान्त में मिले, तो यह प्रश्न विकट समस्या बनकर सामने आ गया।

नव-विवाहिता बधु रजनी निशिकान्त को देखकर तनिक भी नहीं झिझकी। लज्जा की लाली तो उसके मुख पर छा गई, पर वह सिमटकर एक कोने में नहीं जा दुबकी। हाँ, पुलकित-सी जरूर हुई, हँसी भी... ।

'छीः! छीः!'- निशिकान्त के मन ने भीतर ही भीतर कहा- बड़ी निर्लज्ज है यह!

और रजनी ने जब बड़े प्रेम से हाथ जोड़कर नमस्ते की और बोली- मैं तो समझती थी, आप मुझे भूल ही गये हैं ?

तब निशिकान्त क्या समझकर गुस्सा करता । हँस पड़ा । बड़े प्रेम से उसके पास और पास खिंच कर बैठ गया- आपको भूल सकता हूँ यह असम्भव है ।

'कृपा है आपकी......।'

और फिर अनेक बातें । बातों के बीच बीच में समय बचाकर निशिकान्त रजनी को देखता और चुपके चुपके दृष्टि चुरा चुरा कर रजनी देखती निशिकान्त को......।

निशिकान्त- सुन्दर- हँसमुख- विद्वान- सरल......ऐसे ही अनेक भाव रजनी के मन में आते और सोच-सोचकर वह खिल-खिला उठती मानो बिजली सी दौड़कर उसके सामने एक के बाद एक नया दरवाजा खोल जाती और उसीमें से होकर निशिकान्त का एक से एक नया रूप-गुण चमक पड़ता। तब कुछ क्षण के लिए रजनी चुप-सी रह जाती मानो नेत्रों द्वारा उस अनोखी, नवीन, अद्भुत छवि को पी जाना चाहती हो । जानती है जन्म भर उसीको देखना और परखना है; पर उसे तो लगता है- ऊँहूँ ! जन्म भर किसने देखा है। जीवन और सृष्टि का जो भी सत्य है वह आज और यह क्षण है । कल का दूसरा नाम आशा है, उसे कौन जाने......।

दूसरी ओर निशिकान्त देखता है एक नया रूप, एक नया सौन्दर्य, एक नई मोहकता । उनसे बह-बहकर मानो मदिरा का स्रोत उमड़ा पड़ता है । उसी में डूबता-उतराता वह बह चलता है । बहा चला जाता है । थकता नहीं अपितु जितना बढ़ता है उतनी ही और गर्मी पाकर मानो उस सारे समुद्र को उसी क्षण उलीच जाना चाहता है ।

तभी रजनी कह देती है- कैसा अद्भुत है यह संसार ! आज से पहिले मैंने आपको देखा नहीं, आपने मुझे नहीं देखा......!

विष्णु

निशिकान्त चौंककर रजनी को देखने लगता है।

रजनी कहती जाती है– फिर भी हम दोनों इतने निसंकोच, कि मानो जन्म-जन्म के साथी संगी......।

निशिकान्त सोचता है– अरे ! यह रजनी ने क्या कहा ?

और रजनी यकायक चुप होकर फिर पूछ बैठती है– क्या आप मुझे जानते हैं ? विवाह से पहिले हम कभी भी तो नहीं मिले।

निशिकान्त चुप......।

रजनी भी चुप......।

दूसरे ही क्षण उसने सोचा– कैसी बात कही मैंने। मैं जब जानती ही नहीं तो इतनी बड़ी बात कही कैसे ?

और लज्जा से वह कट कट आई. ....।

तभी निशिकान्त ने रजनी का हाथ अपनी दोनों हथेलियों के बीच दबा-सा दिया, फिर उसे अपने होठों पर रख लिया और न जाने क्यों वे दोनों सिहर-से उठे !

न जाने क्यों !

निशिकान्त बोला– रानी, (कहते कहते वह काँप काँप आया) मैं तो आप ही नहीं जानता कि तुम्हें जानता हूँ या नहीं; पर जानना जरूर चाहता हूँ।

रजनी सुनकर सोचती है, इस उत्तर का भी उत्तर दिया जा सकता है; पर बोलती नहीं। मुस्कराकर निशिकान्त की ओर झुक जाती है।

निशिकान्त के भीतर यह प्रश्न घुंडी मारे बैठा ही है; पर वह उसे देखता नहीं, अपितु झुकी हुई रजनी को दोनों हाथों से सम्हालकर कहता है– अब जाऊँ ?

और कहकर दोनों ही चौंक पड़ते हैं– धक ! धक ! अपरिचित हैं वे ? क्या जाने यह धक ! धक•!! क्या है ?

× × × ×

अगले दिन कमरे में जाकर मा कहती है– बहू आज जायेगी।—जायेगी! जाये! फिर कोई क्या करे? जो आता है, वह जायेगा। यह नियम– अखंड है। इसे कौन भंग कर सकता है? इतना जानकर भी मा कहती है सुनाकर– बहू आज जायेगी! कमरे में केवल निशिकान्त है और कोई भी नहीं। तब मा किसे सुनाती है शायद कमरे की दीवारें को। वे क्या जानें? न जाने कौन कौन आया, उनके सहारे पीठ टिकाकर बैठा और चला गया। अनन्त मानवों को उसने देखा– गरीब और अमीर, दयालु और राक्षस, पापी और पुण्यात्मा, सुन्दर और असुन्दर सभी पर उसने समान दृष्टि डाली; पर वह निर्लिप्त रही। काम वह करती है; पर उसका फल वह नहीं चाहती। गीता के निष्काम कर्मयोगी की वह मूर्तिमती सत्ता है।

तब क्या मा अपने को सुनाकर कहती है। बहू की उसे बड़ी चाह थी। बड़े बड़े अरमान लेकर उसने निशिकान्त का विवाह किया था। नहीं, बहू आज जायेगी। वह जानती है, जाना आरज़ी है। दस-पन्द्रह दिन या दो-तीन महीने में फिर निशिकान्त जायेगा और बहू को ले आयेगा। परन्तु जाने में विदाई है और विदाई में पीड़ा। वही पीड़ा उसे कसकती है तभी वह कहती है– बहू आज जायेगी। मानो कहकर मन को जरा हलका करती है। दुःख को कह देने से तज्जन्य पीड़ा कम हो जाती है। फिर भी मा ने कहा तो कान्त ने भी सुना, सुनकर जी धक् धक् कर उठा .....।

'अरे!'– उसने तर्क किया– यह क्या है? और मानो उसके मन के साथ समस्त शरीर ने भी कहा– यह क्या है? इस रजनी को विवाह के पहिले मैंने जाना भी नहीं। एक ही दिन में इतना खिंचाव कि जाने का नाम सुनते ही जी कटता है! नहीं। यह नहीं होगा। यह अनजान लड़की मेरी पत्नी है मुझ पर शासन करेगी। ऊफ! कैसा बन्धन है यह। जो परिचित हैं, प्रेम करते हैं। उनका अधिकार ही नहीं...और उसने कहा– मा ओ मा!

मा जा रही थी, रुकी– कहो!

'मैं आज जाऊँगा।'

'आज ? क्यों रे ?'

'अभी याद आया एक ज़रूरी काम है। न जाने से हर्ज होगा मा !' उसने कह दिया तो मा क्या रोकेगी। विवाह के इतने भरे, पूरे घर में निशिकान्त बहू के जाने से पहिले ही जायेगा, यह बात अनोखी होकर भी होगी। तभी मा 'अच्छा' कहकर चली गई। मानो विधि का विधान ही ऐसा था, यह उसने माना और मानकर सन्तोष कर लिया।

बस बहू के जाने से पहिले ही निशिकान्त का ताँगा आ गया। तब न जाने क्यों उसकी आँखें इधर-उधर भटक पड़ीं। सहसा एक कोने में जाकर वे ठिठक गईं। सहमकर वह ताँगेवाले से बोला— जल्दी करो, भाई !

ताँगेवाला घोड़े को टिटकारी देकर बोला— शाबाश खिलाड़ी !

ताँगा चला। निशिकान्त की आँखें फिर चुम्बक की तरह खिंच चलीं। उन्होंने देखा कि बड़ी बड़ी आँसू भरी आँखें। उनमें एक अव्यक्त आग्रह और तीव्र विषादमय उलहना मानो कहती हों— जाते समय मुझ से मिले भी नहीं ?

निशिकान्त ने यह सब पढ़ा और चिहुँक-सा पड़ा— ऊँहूँ, तुम मेरी लगती ही क्या हो जो मैं विदा माँगता। एक ही दिन में इतना अधिकार !

क्षण बीता मानो कल्प बीता ! आँखें फिर मिलीं। रजनी अब मुस्कराई, निशिकान्त भी खिल उठा। एक नशा-सा उस पर छा गया, एक तीव्र गति से दौड़ने लगा।

उसने कहा— मैं अब जा रहा हूँ, रानी ! शीघ्र ही लेने आऊँगा। अच्छा...। ताँगा काफी दूर निकल गया। निशिकान्त चौंक-सा पड़ा— जा रहा हूँ। जाऊँगा। जरूर जाऊँगा। कौन रोकेगा मुझे ?

जैसे भयंकर स्वप्न से जागा हो— मैं 'मैं' हूँ।

× × × ×

निशिकान्त लौट आया ! कमला ने भी सुना— निशिकान्त विवाह करके लौट आया है। सुन लिया और सुनकर ऐसे माना कि सुना नहीं; पर जो शब्द थे वे छाती के भीतर ही भीतर जम बैठे। जब भी वह अकेली होती या उसी पुराने मार्ग से घर लौटती तो चुपके-चुपके कोई कहता— निशिकान्त आगया है। वह ठिठक जाती, देखती— बाग से निकल कर नाला उसी तरह बहा चला जा रहा है। घास उसी तरह फैली है। वृक्ष मानो दुनिया को भूले वहीं के वहीं खड़े हैं। उनसे छन-छनकर सूरज का प्रकाश घास के उपर बिखर पड़ा है मानो तप्त सूर्यदेव उस हरियाली में अपना खोया हुआ जीवन ढूँढ़ रहे हों...और ऐसे ही देखते-देखते एक दिन कमला चौंकती है— कान्त, अरे कान्त ! तुम कहाँ थे अब तक ? लेकिन कान्त कहाँ था। माली था। बोला—बिटिया ! कई दिन हो गये, कान्त बाबू नहीं देखे।

कमला चिढ़-सी आई मैं क्या जानूँ ? कहाँ गये ? नौकरानी तो हूँ नहीं, जो खबर रखूँ। और जल्दी-जल्दी बढ़ चली ! माली भौंचक-सा वहीं का वहीं खड़ा रहा— यह क्या हुआ ?

× × ×

आखिर कई दिन बाद एक संध्या को निशिकान्त वहाँ आया। माली ने देखा तो खुशी से भर उठा— अरे बाबू कहाँ थे आप ?

'घर गया था, भाई।'

'अच्छे हैं न सब !'

'हाँ, सब ठीक है।'

और फिर कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे। पहिले निशिकान्त ही बोला— कमला यहीं है रे ?

कमला— माली जैसे कुछ सोचता है— हाँ बाबू, कमला यहीं हैं; वे कह रही थीं......

निशिकान्त बीच ही में बोल उठा— क्या कह रही थी रे ?

'यही कि मैं क्या उनकी नौकरानी हूँ, जो खबर रखूँ ?

'हाँ हाँ .....। कहते कहते निशिकान्त ने वह कहकहा लगाया कि दूर-दूर वायुमण्डल में गूँज उठा।

तभी आ गई कमला।

'कमला !'

माली चला गया।

निशिकान्त चुप है, उसे शब्द नहीं मिलते, कमला से वह क्या कहे। मानो जितना अधिक वे बोलते थे, उतनी ही गम्भीरता अब छा रही है। कमला भी चुप है, क्योंकि उसे बहुत कुछ कहना है। पहिले वह क्या कहे, यही निर्णय वह कर नहीं पाती। नदी की भाँति छाती के भीतर भँवर उठते हैं; पर बाहर से शान्त है......

आखिर निशिकान्त बोला— काम अधिक था, इसी से आ न सका ?

'हूँ !'— कहकर कमला मुस्करा-सी आई।

निशिकान्त फिर चुप।

अब कमला की बारी थी— अच्छा यह तो कहो बिवाह हुआ ?

'हाँ।'

'बहू देखी ?'

'हाँ।'

'पढ़ी-लिखी है ?

'सुना है वह है।'

'मिले थे ?'

'हाँ।'

'सुन्दर है ?'

'नहीं जानता।'

'क्या कहते हो ?'

निशिकान्त चुप है।

कमला बोली— बहू को देखा है, बातें भी की हैं, पर जानते नहीं कि वह सुन्दर है या नहीं। क्या अन्धे थे?

'अन्धा— बिल्कुल अन्धा, कमला। नहीं तो कैसे एक अनजान लड़की को बाँध लाता।'

कहकर निशिकान्त फिर अट्टहास कर उठा। और उसी हँसी में मानो उनका सब संकोच बह गया। कमला भी हँस पड़ी! बोली— कोई चिट्ठी आई है?

'आई है।'

'क्या लिखा है, बता सकोगे?'

'क्या लिखा है? इतना लिखा है, कमला! कि समझ नहीं पड़ता।' पूछती है— 'सच बताइये, आप मेरे क्या लगते हैं? क्या मेरे कोई आत्मीय हैं। मुझे बड़ा विचित्र-सा जान पड़ता है, यह क्या हो गया?'

'सच! ऐसा लिखा है?'

सच कमला! अन्त में लिखती है— कहने को बहुत कुछ है; पर न जाने क्यों हाथ काँपता है। वक्षस्थल दबा जाता है। आह!— ना कोई प्रेम का रोग लगाये!"

कमला चुप है......।

निशिकान्त भी चुप होकर कमला को देखता है, फिर नजर घुमाकर बागीचे में देखता है— तालाब के उत्तरी किनारे पर जो चबूतरा है, उस पर चन्द्रमा ने चाँदनी बिछा दी है।

और स्वयं पानी के बीच में स्थिर है......।

लौटकर फिर कमला को देखता है। कमला उसे बड़ी सुन्दर जान पड़ती है, अनन्त लावण्यमयी। सिर का पल्ला खिसक कर कन्धे पर अटक रहा है। उसके खुले हुए केश उसके पल्ले से होकर आगे की ओर बिखर आये हैं। और

वह खड़ी है, बहुत गम्भीर, बहुत गहरे तल में डूबी डूबी। पर कहीं डूबती-उतराती नहीं, स्थिर, शान्त है। सहसा कान्त उसके समीप बढ़ जाता है और सारी कोमलता बटोरकर कहता है— कमला?......

कमला चौंक पड़ती है।

'चौंक पड़ी कमला। क्या सोच रही थी?'

'कुछ नहीं निशिकान्त!'— कमला मानो गहरी निद्रा से जागी। बोली— तुम बड़े भाग्य-शाली हो, निशिकान्त!

'मैं।'

'हाँ, निशिकान्त। सच कहती हूँ, बड़े भाग्य से ऐसी बहू मिलती है। बधाई!'— और कहकर फिर किसी गम्भीर भाव में डूब जाती है। निशिकान्त भी ठिठक कर कुछ सोचने लगता है ..

सन्ध्या का गहरा अँधेरा और गहरा होता जाता है। वृक्ष उसमें छिप चलते हैं। कभी कभी हवा के छू जाने से इधर-उधर बिखरे हुए पत्ते और अस्तव्यस्त हो जाते हैं। पानी हिलकर झिलमिल-झिलमिल करता है। आस्मान का चाँद किसी बड़ी-सी पहाड़ी के पीछे छिप गया है। दूर, बहुत दूर छत पर लालटैन का प्रकाश चमक पड़ता है!

और वहाँ उसी अंधेरे में, टिमटिमाते तारों से भरे हुए आस्मान के नीचे खड़े हैं निशिकान्त और कमला, चुपचाप कहीं दूर तारों के देश की रात सोचते सोचते।

निशिकान्त के भीतर ही भीतर एक चौकोर प्रश्न उठता है— कमला!!

कमला का मन भी प्रत्येक तारे में देखता है— कान्त!!

दोनों जानते हैं— यह है क्या? रजनी ने भी पूछा था— यह हुआ क्या? कमला भी कहती है— अब होगा क्या? मानो सारे मानव किसी अदृष्ट के सहारे बढ़े चले जा रहे हैं और प्रत्येक पग पर प्रश्न कर बैठते हैं— यह है क्या? यह होगा क्या? और समाधान नहीं कर पाते! पाते हैं तो एक प्रश्न के भीतर अनेक और प्रश्न या उसी की पुनरुक्ति?

दोनों कुछ कहने को उतावले हैं। मन में कहते भी हैं; पर बाहर कुछ नहीं होता। बस विमूढ़-से शान्त, केवल शान्त हैं।

आखिर कमला कहती है– (निशिकान्त के नज़दीक खूब नज़दीक आकर यानी सटकर) जाऊँ?

निशिकान्त चौंककर कहता है– चलो।

और तभी वह कमला के हाथ से छू जाता है। बिजली कौंध जाती है। सिर से पैर तक वह हिल उठता है– कमला! कमला!!......

कमला भयंकर वेग से काँपकर आगे बढ़ चली पर सामने का वृक्ष उसने देखा नहीं। उसी से जा टकराई– ओह........

क्या हुआ, कमला! चोट लग गई......?

और बढ़कर कमला को थाम लेता है। सिर पकड़े-पकड़े कमला उसके कन्धे से चिपक जाती है......।

और...

'कमला......!'

कमला उसी तरह स्थिर है। उसके शरीर में बिजली की लहर पर लहर दौड़ रही है। अरे! कितना आनन्द है यह? स्वर्गीय...

तभी मन में कोई कहता है– ना कोई प्रेम का राग लगाये!

निशिकान्त चौंकता है– रजनी...!

और दूसरे ही क्षण ग्लानी लज्जा से भर वह चलता है। एक दम कमला को परे धकेलकर कहता है– कमला! कमला!! तुमने यह क्या किया...?

कमला वृक्ष को पकड़कर काँप-काँप आई– मैंने कान्त...?

'हाँ! कमला तुम नहीं जानती मैं अब, मैं अब...!'

और वह भागा, पीछे फिरकर देखा भी नहीं। तेज, खूब तेज दौड़ता-दौड़ता घर आ गया। अन्दर तक भागता रहा। खाट के पास आकर रुका तो सुना कोई कमला के स्वर में कहता है– जानते हो निशिकान्त मैं तुम्हें कितना

चाहती हूँ ?

वह बोला— नहीं । कमला मैं अब विवाहित हूँ । मैं क्या करूँ ? और यह एकदम चादर तानकर लेट जाता है । जैसे समूची दुनियां उसके पीछे दौड़ रही है और वह उससे बचकर कहीं छिप जाना चाहता है । चादर के भीतर उसका दम घुटता है, पर मुहँ भी नहीं खोलता ; अपितु चारों तरफ से चादर के पल्ले अपने नीचे दबा लेता है ।

छाती के भीतर

●

निशिकान्त मेरे पुराने मित्र हैं । वे देवता हैं । दुनिया उनका आदर करती है । परसों उनका एक पत्र आया था । उसी के कुछ आवश्यक अंग उनकी आज्ञानुसार प्रकाशित करता हूँ ।

आपका 'यात्रिक'

'...आज एक बात मन में उठी है । उसे तुमसे कह देना चाहता हूँ । सच तो यह है, वह बात मेरी नहीं है, मन की है । उसी ने आज मुझे सुझाया है कि उसकी बात मैं जग पर प्रगट कर दूं । यह बात मैं तीसरे व्यक्ति के रूप में लिख सकता था । बहुधा ये बातें ऐसे ही लिखी भी जाती हैं, जिन्हें तुम शायद कहानी कहते हो । यह भी एक सुन्दर कहानी हो सकती है, पर सोचता हूँ मन की बात कहानी से कुछ बढ़ कर होती है । इसी से प्रार्थना है, इस बात को इसी प्रकार प्रकाशित कर देना ।

मैं जानता हूँ, इस बात में जिन व्यक्तियों का जिक्र आयेगा, वे अभी इसी दुनिया में हैं । वे अगर कहीं इस घटना को पढ़ लें तो मुझे क्षमा कर दें ; क्योंकि यह उनकी बात नहीं, न मेरी ही है ; बल्कि मेरे मन की है । मेरे मित्र-बंधु भी यही सोच कर मुझ पर क्रोध न करें । मैं जानता हूँ, वे कहेंगे अवश्य — 'अरे ! जिसे हमने देवता समझा था, वह तो राक्षस निकला ।' लेकिन मैं क्या करूं ? मैं तो देवता हूँ, पर मेरे अदंर जो राक्षस छिपा बैठा है, उसे मेरा देवता पराजित नहीं कर सका । और देवताओं ने राक्षसों को पराजित ही कब किया है ? सच तो यह है कि देवता और राक्षस दोनों मिलकर ही मानव-जीवन की सृष्टि करते हैं । यही सोचकर मैं डरता नहीं । मेरा

देवतापन सब पर प्रगट है, आज राक्षसपन भी प्रकट होगा, यह जानकर मुझे खुशी है और मैं मन का कृतज्ञ हूँ।

तुम जानते हो जब अनेक कठिनाइयों के बाद मेरा विवाह हुआ था, मुझे कितनी बधाइयाँ मिली थीं। मित्रों ने कहा था—निशिकान्त ! ऐसी सुशिक्षित और सभ्य स्त्री तुमने पाई, तुम भाग्यशाली हो !

मैं हंस कर रह गया। मेरी हंसी से मेरे मित्रों ने समझा था, मैं कितना खुश हूँ। और मैं खुश था भी, परन्तु एक दिन मेरा मन मुझसे कहने लगा — तुम खुश होते हो, लेकिन तुम्हारा भाग्य फूटा है।

मैंने कहा—क्यों रे !

वह बोला—तुम्हारी स्त्री सुशिक्षित है, परन्तु तुमने उसका रूप देखा है ? क्या वह नारी का रूप है ? क्या वह तुम्हारे योग्य है ?

बात मुझे ठीक तो लगी लेकिन मैंने हँस कर कहा—रूप दो दिन की शोभा है। मुझे उसकी चिंता नहीं। मैं हृदय की सुन्दरता का उपासक हूँ।

क्रुद्ध होकर वह बोला—तुम झूठे हो ?

'मैं !'

'हाँ तुम...।'

मैंने कहा – तुम ऐसी बात क्यों कहते हो ! मैंने कब कहा कि मैं रूपवती स्त्री चाहता हूँ। मैंने विज्ञापन में भी रूप का जिक्र तक नहीं किया था। मैं सदा अपने मित्रों और सम्बंधियों से यही कहता था कि मैं शरीर की सुन्दरता से बढ़ कर मन की सुदंरता चाहता हूँ।

वह बोला—तुम ठीक कहते हो। लेकिन तुमने यह सब बातें इसीलिए कही थीं कि तुम रूप के उपासक थे। तुम्हारे अन्दर रूप की आग भभक रही थी और तुम उसे प्रकट करना नहीं चाहते थे। यदि तुम शरीर की सुन्दरता के प्रति उदासीन होते तो कभी उसका जिक्र ही न करते। किसी बात से बार-बार इन्कार करने का मतलब तो

यह है, तुम उसके बिना जी भी नहीं सकते ?

मैंने कहा – लेकिन...

बीच में रोक कर वह बोला — मैं जानता हूँ, तुम क्या कहोगे ! परन्तु मेरी बात तुम सुन लो । मैं प्रमाण देकर अपनी बात की पुष्टि करूंगा । अनेक लोग हाथ जोड़कर तुम्हारे पास दौड़े आते थे, प्रार्थना करते थे कि तुम उनकी लड़की का हाथ थामकर उन्हें मुक्ति दो । उधर तुम उनकी करुणा-भरी दृष्टि की उपेक्षा करते थे । तुम कहते थे – अभी विवाह नहीं करूंगा । मुझे आप क्षमा कर दें ।' तुम जानते हो यह क्षमा उन अभागी लड़कियों के अभागे पिताओं पर कितनी चोट करती थी !

मैंने कहना चाहा – लेकिन मैं सचमुच ही विवाह करना नहीं चाहता था । मैं क्या करता ? क्यों वे लोग मेरे पीछे पड़े थे ? क्यों नहीं साहस करके वे कह देते कि लड़की हमारे घर है जब कोई योग्य लड़का आकर हमसे कहेगा तभी हम विवाह करेंगे ?

मेरी बात सुनकर वह हंस पड़ा—तुम्हारे साहस की मैं प्रशंसा करूंगा, परन्तु निशिकान्त ! बात ऐसी नहीं थी । दुनिया तुम्हें पूजती है । तुम जान-बूझ कर बुरा काम भी नहीं करते, लेकिन……

'लेकिन क्या'—मैं उतावला-सा बोल उठा ।

'लेकिन यही कि उस दिन जब तुम दफ्तर से लौट आये थे, तुम्हारी मा ने तुमसे कहा था–तू पढ़ी लिखी लड़की चाहता है । वह लड़की पढ़ी-लिखी है । अंग्रेजी की दसवीं कक्षा पास है और हिन्दी की प्रभाकर । घर का काम जानती है । सीधी ऐसी है, जमीन में दृष्टि गड़ा देती है··· ।'

'और कहते हैं बड़ी सुन्दर है मानो देवी का रूप ।

' हूं । ' — तुमने कहा था ।

और मैंने कहा – और तुमने अंत में इसी लड़की से विवाह करने का वचन दिया था । आज यही लड़की तुम्हारी पत्नी है । यही लड़की है, जिसके कारण तुम्हें बधाई पर बधाई मिल रही है,लेकिन...

मैं जैसे काँप गया । एक सिहरन सिर से पैर तक दौड़ गई । मैंने कहा, यह

तुम हो जिसने आग लगाई है । यह तुम ही हो, जिसने मेरा जीवन पापमय और कलंकमय बना डाला है...

और मैं न जाने क्यों फुस-फुस कर उठा, ' देवी का रूप ।'

मुझे याद आया जब पहली बार मैंने अपनी पत्नी को देखा तो जैसे मैं चौंक उठा था—देवी का रूप...

लेकिन मैंने कहा न कि मैं प्रगट में रूप का उपासक नहीं था । वह तो मन था, इसी कारण मैं भीतर ही भीतर जलकर ऊपर से शांत बना रहा । परन्तु न जाने कैसे मेरी पत्नी ने यह बात समझली । एक दिन उसने मुझसे कहा, तुम चाहते थे तुम्हें कोई सुन्दर स्त्री मिलती ।

मैंने हंस कर कहा—किसने कहा तुमसे ऐसा ?

वह मुस्करा कर बोली—मैं जानती हूं ।

मैंने कहा— ' नहीं , नहीं ! मेरे लिए जो भी हो तुम । तुमसे बढ़कर सुन्दर कौन हो सकता है ? शरीर की सुन्दरता भी क्या सुन्दरता है ? सुन्दरता तो हृदय की वस्तु होती है, वह तुम्हें मिली है ।

मेरी पत्नी की आँखों में कृतज्ञता उमड़ आई । मेरे पास या कहूँ मेरे भीतर सिमटती-सिमटती वह बोली—सच कहते हो ?

' सच ।'

' तुम देवता हो !'

और कहते-कहते उसने चरण छू लिये । मैं हिल उठा । छाती के भीतर से कोई बोला — ' झूठे कहीं के ' । लेकिन यह आवाज़ इतनी पतली थी कि मैं ठीक-ठीक सुन न सका और पत्नी के प्रेम को पाकर गद्गद हो उठा ।

ठीक उसी समय मेरे एक मित्र आ पहुँचे थे । पत्नी चली गई थी । उन मित्र की शादी अभी हुई थी । मैंने उनसे पूछा—कहिये विवाह कुशल से हुआ न ?

' आपकी कृपा से आनंद ही है ।'

' पत्नी कैसी है ? इच्छानुसार है न ?'

'हाँ' इसी साल मैट्रिक किया है।'

'सुन्दर है ?'

'हाँ।'

'तब तो मुबारिकबाद देना चाहिये। '

वे खिलखिला पड़े। बोले— भाइयों ! पत्नी ठीक मिलती है तो जीवन बन जाता है। मुझे खुशी है। मुझे अपने जीवन का साथी मिला है। वे सभी लोग सुशिक्षित, सभ्य और प्रतिष्ठित हैं। पैसा भी काफी है।

'अच्छा' – मैं कहता-कहता मुस्करा उठा। तभी न जाने अंदर से किसी ने कहा – सुनते हो कितना भाग्यवान् है यह ! एक तुम हो जो रूप की देवी के भुलावे में बड़े बड़े घरों को ठुकरा चुके हो।

मैंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। मित्र से बहुत देर तक घुल-घुलकर बातें करता रहा। बातों ही बातों में पता लगा कि प्रांत में अनेक प्रसिद्ध नेताओं के सन्देश उनके विवाह पर आये थे। प्रसिद्ध पत्रों में उनके नाम छपे थे। विवाह के ठीक बाद ही वे मंसूरी पर्वत पर चले गये और विवाह उनका पूर्ण आधुनिक रीति से हुआ था इत्यादि इत्यादि।

मैं सुनता रहा और खूब हंसता रहा। मैं जान रहा था कि मन बैठता जा रहा है। उनके हरेक शब्द पर मेरा मन कह उठता है, 'और तुम्हारा विवाह ?'

खैर, खुशी-खुशी मित्र विदा हुए और मैं अपनी खुशी भूल कर पत्नी से बोला– रजनी ! सुनो मैं अभी जाऊँगा। जल्दी भोजन बनाओ, देर मत करो। तुम रोज देर कर देती हो।

मेरी पत्नी ने कहा — अभी बनाती हूँ जी, आप स्नान कर लीजिये। लेकिन उस दिन मैं स्नान भी न कर सका और जब दफ्तर पहुँचा तो एक घंटा देर हो चुकी थी

परन्तु उसके तीसरे दिन ही मैंने मित्र की पत्नी को देखा। उसका रङ्ग साँवला था। चेहरा भी सुन्दर नहीं था। मैं न जाने क्यों गद्गद हो उठा। न जाने क्यों ?

× × ×

विष्णु

याज्ञिक ! आरम्भ की यह बात मैंने इसलिये कही कि तुम उस घटना को समझ लो जो तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ । इसके बाद तो यह क्रम था ही कि मैं अपने मित्रों और सम्बन्धियों के विवाह के समाचार सुनता और सुनकर समझ लेता कि उनकी पत्नियाँ सभ्य, सुशिक्षित और रूप की देवी हैं । न जाने तब दिल में क्यों हूक-सी उठती ! बधाई देता-देता मैं अट्टहास कर उठता । कभी अपने मित्रों को पत्नी का हाथ पकड़े बाहर घूमते देखता तो सोचता कितने भाग्यशाली हैं ये लोग ! मुझे याद है, एक दिन मेरी पत्नी भी पास आई थी। कहा था – घूमने चलो ।

मैं बोला—तुम जा सकती हो । मित्रा को साथ ले लो । वह न जावे तो सुमंत को पुकार लो । पास आकर करुणाभरी वाणी से वह बोली—तुम चलो ।

'मैं !'

'हाँ जी !'

मैंने कहा—मैं बहुत तेज चलता हूँ और दूर जाता भी हूँ । तुम मेरे साथ निभ न सकोगी । वह जैसे मन मारकर लौट चली । मैंने पुकारा — अरे सुनो ! मैं शहर के बाहर तुम्हें मिलूंगा, अच्छा !

और पत्नी अकेले ही सैर करने जाती रही । मुझे याद नहीं कभी भी मैं उसे अपने साथ लेकर घूमने गया हूँ । इसके विरुद्ध जब मेरी पत्नी अपने मायके गई हुई थी , मुझे एक अद्भुत बात मालूम हुई । प्रतिदिन प्रातः और संध्या को मैं सुनता कि तारवाला मुझे आवाज़ देता है — बाबू जी ! आपका तार है ।

उस दिन भी ऐसा ही हुआ । मैं बैठा था कि तारवाले ने आकर कहा — बाबू जी ! आपका तार आया है !

'मेरा ! '

'जी हाँ ! निशिकान्त आप ही हैं ?'

'मैं ही हूँ '—और तार लेकर पढ़ा । उसमें लिखा था — कल रात दिल की धड़कन बंद होने से रजनी की मृत्यु हो गई, शोक !

मैं काँप उठा । हृदय धक-धक कर उठा । तार हाथ से गिर पड़ा और लगा

जैसे मेरी संज्ञा लुप्त हो गई। मैंने जाना मेरा सब कुछ लुट गया। माँ ने घबरा कर पूछा—क्या है रे!

'रजनी मर गई।'

वह चीख उठी — क्या...........

'सच' और फिर घर में एक कुहराम मच गया।

मा रोते-रोते पागल हो गई और फिर संतोष करके चुप हो गई। मित्र और सम्बंधी शोक प्रकट करने आये और चले गये। धीरे-धीरे दिन बीते और शोक नष्ट हो गया। उसके स्थान पर एक और नई समस्या पैदा हो गई। मेरे हितकारी बन्धु आये और बोले — 'निशिकान्त हुआ तो बुरा, पर अब भूल जाओ और घर बसाने की चिंता करो।' मैं आदर्शवादी था। मुझे चोट लगी। मैंने कहा — क्या कहते हो? मैं अब विवाह करूं! करना ही होगा भइया— वे बोले।

'मैं नहीं करूंगा' — मैं बोला।

और वे निरुत्तर होकर चले गये। पर दुनिया का नियम था। वे गये और अनेक आये। अंत में एक दिन मुझे अपने विचार में संशोधन करना पड़ा कि मैं विवाह कर सकता हूँ, परन्तु विधवा से करूंगा। क्योंकि मैं मानता हूँ, विवाह जीवन में एक ही बार होता है। दूसरी बार विवाह नहीं होता, अपितु आपतकाल की रक्षा मात्र है।

मुझे याद है, बहुत विरोध और दुख के बाद मेरी बात मान ली गई थी। और यह भी जानता हूँ एक अनंत सौंदर्यमयी अक्षतयोनि विधवा से मेरा विवाह हुआ। विवाह से पहले मैंने उस प्रभा नाम की विधवा से मुलाकात की। अपने भावी उद्देश्यों का परिचय कराया। प्रेम, कर्तव्य, सेवा आदि अनेक विषयों पर एक लम्बा व्याख्यान दिया। उसने मेरी बातों को ध्यान से सुना। मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने उससे साफ कह दिया था – मैं तुम्हारे रूप के कारण नहीं, बल्कि गुणों के कारण तुमसे विवाह कर रहा हूँ।

प्रभा कृत-कृत्य हुई।

विष्णु

विवाह के बाद वहीं बधाइयों का तार-सा बंध गया। विवाह क्या था सामाजिक क्रान्ति थी। नेताओं के बिना माँगे संदेश मिले। पत्रों में इतने चित्र छपे कि मेरा कमरा उन चित्रों से भर गया और साथ ही हर्ष से मेरा हृदय भी। छाती खुशी से निरन्तर धक-धक करने लगी। किसी ने कहा– प्रभा के सामने रजनी का क्या मूल्य था? वह कूड़ा थी, यह रत्न है।

मैंने कहा-- -छी! छी! क्या बकते हो?

लेकिन उसकी बात ठीक थी। पहली ही संध्या को जब प्रभा मेरे पास आई, बोली – घूमने चलोगे?

मैंने हंसकर कहा—चलो, चलो!

वह तैयार हो कर लौट आई। उस समय वह बड़ी सुदन्र लग रही थी। उसकी रेशम की नीली साड़ी, लाल जम्पर, पीठ पर लम्बे बाल और कानों में लटकते लम्बे मत्स्याकार कर्णफूल और सबसे बढ़कर उसकी मदमाती मुस्कराहट। मैंने प्रफुल्लित होकर कहा—प्रिये! तुम बड़ी सुन्दर हो!

वह मुस्करा उठी और दोनों सैर करने चले गये। मैंने देखा – रास्ते में चलने वाले हमें देख रहे थे। जो दुकानों पर बैठे थे, वे भी एक छिपी नज़र उधर डाल लेते थे; ऊपर खिड़की में से भी कई हसरत भरी, कौतूहल भरी दृष्टियाँ हम पर पड़ जाती थीं। कभी कोई गुण्डा गुन-गुन कर उठता, परंतु हम तो सब ओर से भूले घुल-घुल कर बातें करते चले जा रहे थे। हाँ, मैं कभी गर्व से आँख उठाकर इधर-उधर देख लेता था...।

ठीक इसी समय कोई पुकार उठा— निशिकान्त?

मैं चौंक उठा। ऐसा मालूम हुआ, किसी ने मुझे स्वर्ग-कानन से नीचे धकेल दिया और मैं उल्ट मुंह पृथ्वी पर आ पड़ा हूँ। मैंने आँखें मल कर देखा — प्रभा न जाने कहाँ चली गई; उसके साथ सोंदर्य, सौंदर्य का प्रदर्शन, प्रेम की मधुर कल्पना सब नष्ट हो गई। जैसा कि मैंने देखा, मैं अपने पलंग पर बैठा था। इधर उधर पुस्तकें बिखरी थीं और खुले कागज हवा में उड़ रहे थे,···हठात् मेरा दिल बैठ गया और मैं चिल्ला उठा—कौन है?

मा ऊपर आ रही थी। बोली— रत्नप्रकाश का आदमी आया था।

'क्यों ?' —मैंने कहा।

स्टेशन पर हिंदू-मुसलमानों की लड़ाई हो गई हैं। पाँच आदमी मर चुके हैं।'

'कब हुआ मा :' मैं चौंक उठा।

'कहते हैं अभी-अभी दो व्यक्ति आपस में लड़ रहे थे। एक हिंदू और दूसरा मुसलमान था। बस बात की बात में आप्स में दंगा इतना बड़ा हो गया कि खून की नदी बह उठी—कहती-कहती मा कांप गई। फिर एक पत्र मुझे दिया और बोली—यह चिट्ठी आई है।'

मैंने उत्सुकता से चिट्ठी लेकर खोली। वह रजनी की थी, लिखा था—मेरा जी यहाँ नहीं लगा। कल (यानी आज) आपकी सेवा में पहुँच रही हूँ—इत्यादि...

हठात् मैंने सोचा—आज आ रही है। और सोचकर मैं काँप उठा।

मा बोली—क्या लिखा है ?

'आज वह आ रही है।'

'आज ! गाड़ी तो अभी आने वाली है। अब क्या होगा रे ?' और मा पागल-सी काँप उठी। उसकी आँखों में आँसू भर आये...

मैंने कहा—मैं जाऊंगा।

वह बोली— तू कैसे जायेगा... ?

'तब ?'

'कैसे कहूँ ?'...मा हतभागनी-सी खड़ी की खड़ी रही। फिर सहसा बोल उठी—पड़ोस में फोन है। तू स्टेशन पर फोन कर दे।

'स्टेशन पर फोन नहीं है।'

'नहीं है !'

मा फिर चुप हो गई। मैंने चुपचाप कपड़े पहने और लाठी उठाकर चल पड़ा।

मा चौंक पड़ी—कहाँ जायेगा ?

'किसी को देखता हूँ।'

और किसी तरह मा को समझा कर मैं बाहर आया। चारों तरफ सन्नाटा था। कभी-कभी कोई आदमी चला जाता था। झगड़ा शहर के अंदर नहीं था, परंतु उसका प्रभाव प्रत्यक्ष था और लोग चुपचाप भय की प्रतिमा बने फुस-फुस करते और आगे बढ़ जाते। मैं भी आगे बढ़ा, परन्तु ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता, त्यों-त्यों सन्नाटा बढ़ता जा रहा था। पुलिस दिखाई देने लगी थी। शहर के दरवाजे तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने मेरी लाठी रखवा ली।

मैं भय से काँप उठा—अब ! और सहसा तभी मुझे ख्याल आया, मैं कैसे जा सकता हूँ ?

उसी समय मन ने कहा— पगले हो ! जानबूझ कर आग में कूदते हो !

'लेकिन रजनी ?'

'अरे तुम भी भोले हो, उसे स्टेशन से आने कौन देगा ?'

'लेकिन वह स्त्री है, रोयेगी शायद...।'

वह हंस पड़ा—मूर्ख हो। ऐसे भी कोई मारता है और फिर मर भी जाय तो क्या है ? उसे मर ही जाना चाहिये।

मैं काँपा—उसे मर जाना चाहिये...।

'हाँ'—किसी ने मुझ से कहा—इससे बढ़कर सुंदर अवसर और कब होगा ?

मेरी अवस्था उस समय विचित्र हो रही थी। मैं क्षण भर में क्रोध से काँप उठता था और क्षण भर में मुझ पर लज्जा छा जाती थी। मैं जान रहा था कि मेरा चेहरा फीका पड़ रहा है और मेरी आँखें बाहर निकली पड़ती हैं। मैंने चीख कर कहा—उसे आज आने को किसने कहा ? अपनी मूर्खता का परिणाम भोगे वह। मैं क्या करूँ......

मैं लौट पड़ा। मैं तेज़ चल रहा था और विचारों का एक प्रवाह रौरव शब्द के साथ मस्तिष्क से हो कर बह रहा था।

' क्या हुआ ?' माँ ने देखकर उतावली से पूछा।

'लड़ाई तेज है'—मैं हठात् बोल उठा।

'अब...'

प्रश्न मैंने भी दुहराया — अब ? पर उत्तर इतना विश्रंखल-सा था कि काँप कर रह गया। मैंने इतना ही कहा—वह ऐसे समय आई ही क्यों ?

और ऊपर चला आया, लेकिन मैंने कमरे में प्रवेश भी नहीं किया था कि मा चिल्ला उठी—वे आ गये ।

मैं हठात् बोल उठा —कौन ?

और मेरी आँखों ने देखा कि उसी समय रजनी को आगे करके उसके बड़े भाई ने मोहल्ले के दरवाजे में प्रवेश किया है और मां का चेहरा प्रकाश से खिल उठा है। लेकिन मेरी आंखें खुली की खुली रह गई। मैं लज्जा और ग्लानि से तड़फ उठा। मुझे लगा आकश टूट कर पृथ्वी पर आ रहा है और कमरे की दीवारें पृथ्वी में धंस रही हैं। मैं उनसे दबा चला जा रहा हूँ—दबा चला जा रहा हूँ...लेकिन यह सब हुआ नहीं ! हुआ तो यही की रजनी आकर मेरे चरणों में इस प्रकार झुक गई मानो अब उठेगी नहीं।

———

विष्णु

पण्डितजी

●

पण्डितजी का बदन गठा हुआ था और उनकी बड़ी-बड़ी आँखें सदा निराशा, क्रोध और अभिमान से उबलतीं रहती थीं। वे मोटे-से-मोटा खद्दर पहनते थे और स्वभाव के महा झक्की थे। मान्यताएं भी उनकी बड़ी अजीब थीं। उनके नातेदार उनसे घबराते थे और पड़ोसी कन्नी काटकर निकल जाते थे, परन्तु हरिजनों को उनसे बड़ा प्रेम था। उनके लिए वे नहाने और कपड़े धोने के साबुन बाँटा करते थे। रामायण के इतने प्रेमी थे कि प्रतिदिन सबेरे पाँच बजे से सात बजे तक तुलसीदासजी की रामायण का परायण करते थे। स्वर—परमात्मा की कृपा से—गर्दभराग से होड़ लेता था, लेकिन वे मानते थे कि भगवान् स्वरकी चिन्ता नहीं करते, वे भाव के भूखे हैं। भगवान् भगवान् हैं, मैं उनकी बराबरी नहीं कर सकता, इसीलिए उनके स्वरको लेकर मुझे कई बार उन्हें युद्ध की चुनौती देनी पड़ी थी।

वे मेरे एक दीवारके पड़ोसी थे, वस्तुतः मैं उन्हीं के मकान में रहता था। जैसे ही मैं पढ़ना शुरू करता वे हारमोनियम पर—'सियावर रामचन्द्र पद जयशरणम्' का राग अलापने लगते थे।

सुरीला स्वर होता तो मैं संगीत के लोभ में उनके इस अत्याचार को सह जाता, परन्तु अब समस्या जटिल थी। वे नहीं माने और एक दिन नियमित वाक्युद्ध के बाद मैंने उनसे बोलना छोड़ दिया। तब वे यदि कहीं रास्ते में मिल जाते थे तो मैं कन्नी काटकर निकल जाता था। लेकिन वे थे कि नहीं माने। तीसरा दिन आया तो छतपर से झाँककर बोले—

'निशिकान्त ! इधर सुनो।'

मैं अचकचाया पर, बेबस था; जवाब दिया—जी।

—ये गांधी और नेहरू दोनों गद्दार हैं।

मेरी आँखें उठीं, देखा—उनकी आँखें क्रोध से तमतमा रही हैं।

मैं जान-बूझकर मुस्कराया, पूछा—क्या बात है।

'बात क्या होती ? हमेशा च्यांगकाई-शेककी तारीफ करते हैं। वह अव्वल नम्बर का बदमाश और अंग्रेजों का आदमी है और मैं कहता हूँ ये गांधी और नेहरू भी अंग्रेजों के जासूस हैं। असल में अंग्रेज चाणक्य हैं। पहले इन्होंने धर्म को बिगाड़ा। दयानन्द इन्हीं का टुकड़खोर था। कम्बख्तने हिन्दू धर्मका वह नाश किया कि पुनर्जागृति की कोई आशा नहीं है। अब राजनीतिको गन्दा करनेके लिए उन्होंने गांधी को भेजा है। भगवान् मेरा जाने, मैं सच कहता हूँ, लन्दन में बैठा हुआ चर्चिल मेरे बारे में जानता है और कहाँ तक—उसके पास यह रिपोर्ट पहुँच जायेगी कि पण्डित नन्दराम, बाबू निशिकान्त को हमारी असलियत समझा रहे थे आदि आदि······।

और तब सदाकी भाँति वे आध घण्टा तक धारा-प्रवाह बोलते रहे। जब थक गये तो पूछा—तुम्हारी क्या राय है ? गांधी को तुम अब भी महात्मा मानते हो ?

मैं तब बात करनेके मूडमें नहीं था। सच तो यह है कि मैं उनसे बात करना चाहता ही नहीं था। इसलिए उनके प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर न दे सका। नतीजा यह हुआ कि वे क्रोध से पागल हो उठे। उनकी बड़ी बड़ी आँखें आग उगलने लगीं। बोले—'तुम्हें बातें करनेकी तमीज नहीं। एक शरीफ आदमी तुम्हारे पास आकर तुमसे प्रश्न करता है और तुम जवाब भी नहीं दे सकते ? मैं नहीं समझता था, तुम इतने असंस्कृत हो, नहीं तो······।'

'नहीं तो······!' मैंने भी क्रुद्ध हो कर पूछा।

बस तब वे बिना बोले, क्रोधसे फुफकारते हुए धम-धम जीना उतर गये।

मैंने चिनचिनाकर कहा—मौत भी नहीं आती कम्बख्तको। धमकी देता है, नहीं तो मकान में नहीं रहने देगा, यही न ? रहना ही कौन चाहता है। मैं कल ही इसका मकान छोड़ दूंगा।

लेकिन जैसे ही कल आया, मेरी दुनियामें अचानक एक तूफान उठ खड़ा

हुआ। उस दिन मेरे एक सम्बन्धीके घर मित्र-भोज था। उसीसे निपटकर मैं जब लौटा तो एक बज चुका था। इसलिए सबेरे सैर करनेके समय आंख नहीं खुली लेकिन अर्द्धनिद्रामें मैंने सुना कोई पुकार रहा है—बाबू निशिकान्त ! निशिकान्त बाबू !

क्रुद्ध होकर सोचा—पण्डितजी हैं। मरने दो।

स्वर फिर तेज हुआ—बाबू निशिकान्त ! निशिकान्त बाबू !

क्या मुसीबत है ! बके जाओ। मैं नहीं जाऊँगा।

स्वरकी तेजी क्रोध में पलटने लगी। सुना–बाबू साहब ! नीचे आइये······।

मैं चौंका—ये तो पण्डितजी नहीं हैं।

आँखें खोलीं, देखा—अभी काफी अन्धेर है। आसमान में तारे टिमटिमा रहे हैं और नीचे से आवाज़ आरही है, 'बाबू साहब ! नीचे आइये······।'

अभी आता हूँ जी—मैंने उठते उठते कहा और साथ ही कौतूहलवश नीचे झाँका, जैसे नागराज मुंह फाड़े खड़े हों, काँप उठा, प्राण खिंचने लगे। नीचे मेरे घरके सामने लगभग दो दरजन पुलिसवाले खड़े थे।

पुलिस ! बप्पारे·········

शीघ्रतासे मैंने छोटे भाई को जगाया। सौभाग्य से मा घर गई हुई थीं और हम अकेले थे। वह आँख मलता हुआ उठा। मैंने कहा—नीचे पुलिस है, शीघ्रता करो।

पुलिस—वह चौंका।

लेकिन मैं उत्तर देने को नहीं रुका। नीचे आकर किवाड़ खोले। सामने सी० आई० डी० का रिपोर्टर खड़ा था। बोला—आपकी तलाशी है।

यन्त्रवत् मैंने उन्हें देखा और क्षणभर रुककर कहा—ले लीजिये।

आप बाहर आजाइये, और लोग......।

'केवल मेरा छोटा भाई है।'

'बुला लीजिये।'

हमें बाहर निकाल कर उन्होंने घरके ताला लगा दिया। उन्हें कहीं और

तलाशी लेने जाना था इसलिए ६ सिपाही और एक हवालदार को मेरी रखवाली के लिए छोड़कर चले गये। मैं उनके बीच में बैठ गया। मैं मान लूँ, उस समय जून का महीना था, पर मैं कांप रहा था। मेरे दाँत बार-बार बज उठते थे। सोचता था मुझे डर नहीं है, न गिरफ्तारीका, न नौकरी छूटने का, पर फिर भी काँप रहा था। एक क्षण के लिए मैं ग्लानिसे भर आया— यह कैसी कायरता है ?

दूसरे ही क्षण मनमें कहा—कायरता ? नहीं मित्र ! यह कायरता नहीं है।

फिर यह कम्पन क्यों है ?

गौरव के कारण ?

सोचकर मैं प्रसन्न हो उठा। तभी देखा—दिन अच्छी तरह चमक आया है और मोहल्लेके नरनारी अचरज से हमारी ओर देख रहे हैं मानों किसी ने आत्महत्या करली है। वे अचरज, भय और आशंकासे पूर्ण हैं। धड़कते हृदय से किवाड़ोंके बीचसे झाँकते हैं और फिर एक झटके के साथ पीछे हट जाते हैं। शायद वे सोचते हैं—निशिकान्त ने चोरी की है।

निशिकान्त डाकू है। निशिकान्त क्रांतिकारी है........।

कुछ क्षण बीते। पुरुषवर्ग कामपर जाने के लिए बाहर निकला। मैं उन सबको जानता था। उनमें मेरे मित्र थे, पर आज की इस घटना ने उस मित्रता का आवरण उतार दिया था। मैंने कौतूहल से देखा—कुछ बंधुओंने मेरे पास आते-जाते आँखें मींच ली हैं। कुछ झुके और बोले—हवालदार साहब ! आदाब अर्ज, बन्दगी हुजूर ! उन्होंने मुझे देखकर भी अनदेखा कर दिया। उनका अपराध नहीं था। पुलिस पर जिसकी कृपा हो वह सभ्य नागरिकोंकी घृणा का पात्र होता है। परन्तु इस समय मेरे कानोंमें एक चिरपरिचित स्वर गूंज उठा। कौतूहल से आँखें उठाकर देखा—छड़ी घुमाते, गरदन उठाये, और खड़ खड़ करते पण्डितजी सैर करके लौट आये हैं। उनकी आँखों में वही निराशाजन्य अभिमान भरा पड़ा है। मैंने चाहा मैं आँखें बन्द कर लूं, पर वे तभी पुकार उठे—अरे निशिकान्त ! क्या है यह ?

मैंने बरबस मुस्कराकर कहा—नमस्ते !

वे बोले—नमस्ते ! क्या बात है ?

'तलाशी होगी ।'

'तुम्हारी ·······?'

'जी ।'

'तुम्हारी तलाशी ? क्या कहते हो ? तुम तो सरकारी नौकर हो ?' और बस अग्नि प्रज्वलित हो उठी । हवालदारको सम्बोधित करके बोले—'क्या बात है जी ? क्यों तलाशी लेते हो ? यह तो सरकारी नौकर है । तुम्हारा भाई है । तलाशी लेनी है तो मेरी लो·········।'

और सहसा रुककर पूछा—'कोई महकमेका झगड़ा है या राजनीतिक ।

शान्ति से हवालदारने कहा—राजनीतिक ।

'तो फिर मेरी तलाशी लो । मैं पच्चीस सालसे बागी हूँ । मेरी ओर कोई उंगली भी नहीं उठाता । भगवान् मेरा जाने, सरकार कैसी विचित्र है ? जो उसका सिर फोड़ते हैं उनसे वह काँपती है और जो उसकी गुलामी करते हैं उनको तंग करती है ।'

अचरज कि हवालदार अब भी तेज नहीं हुआ । बोला—लालासाहब ! हम तो हुक्म के बन्दे हैं । सरकारने कहा तो चले आये हैं । हमें कुछ नहीं मालूम ।

'भगवान् मेरा जाने, मैं सब कुछ जानता हूँ । तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, तुम तो गुलाम हो.........।'

जैसे सहसा एक धक्का लगा हो तेज होकर बोले—'और है क्यों नहीं । तुम गुलाम क्यों बने । क्या तुम नहीं जानते गुलामी सबसे बड़ा पाप है ? और मुझसे मुड़कर कहा—'खड़े हो जाओ, क्यों बैठे हो ? क्या मौत हो गयी है ? क्या तुमने डाका डाला है ? उठो शौचादि जाओ । मैं तब तक दूध गर्म करता हूँ ।'

मैंने अब नम्रता से कहा—'पण्डितजी ! मैं ठीक हूँ, आप चिन्ता न करें ।'

पण्डितजी तिलमिला उठे—'तुम बुजदिल हो ।'

मुझे क्रोध नहीं आया । हँसी आयी, उसे रोककर मैंने फिर नम्रतासे कहा—

'नियम-विधान जो है, उसकी अवहेलना करना ठीक नहीं है।'

वे बोले—'जो नियमोंके गुलाम हैं, वे ही ज्यादा बुजदिल हैं। भगवान् मेरा जाने, मुझे अचरज होता है, चालीस करोड़ इन्सान कैसे कुत्तों की तरह अंग्रेजोंके तलुये चाटते हैं।

और फिर मुड़कर हवलदारसे कहा—'देखोजी! तुमने जो लाल पगडी बाँधी है, यह तो क्रांतिका रंग है, परन्तु तुम तो सफेद चमड़ेको देखते ही ठण्डे पड़ जाते हो…।'

बातें आगे बढ़तीं, परन्तु तभी सी. आई. डी. के थानेदार लौट आये और तलाशी का काम शुरू हो गया। अन्दर जानेवालोंमें केवल चार आदमी थे—मैं, मेरा छोटा भाई और दोनों थानेदार। पण्डितजी इच्छा रहते भी न आ सके। मुझे डर लग रहा था, वे भड़क उठेंगे, परन्तु वे चुपचाप ऊपर चले गये और तन्मय होकर रामायणका पाठ करने लगे। उधर पुलिसके थानेदारने मेरी नूरनकी शीशियोंमें बम बनानेका मसाला ढूंढना प्रारम्भ कर दिया। जब उन्होंने मंजनको चखकर देखा तो मैं अपनी हँसी न रोक सका। वे बोले—हँसिये नहीं। क्रांतिकारी लोग पोटासका मंजन किया करते हैं।

और इस प्रकार उन्होंने आटा, दाल, चावल, घी, तेल सभीकी वैज्ञानिक रीतिसे परीक्षा की। वे लकड़ियों के ढेरमें पूरे एक घण्टा तक उलझे रहे। ऊपर मेरी लाइब्रेरी में भी उन्होंने पूरी दिलचस्पी ली। एक के बाद एक आलमारी, एकके बाद एक दराज उन्होंने खोली और मेरे चित्र, पुराने टिकटों तथा पत्रोंमें क्रांतिके घोषणापत्र ढूंढने लगे। तभी सहसा मेरी डायरी उनके हाथ लग गयी। बोले—'डायरी लिखते हो?'

'जी।'

और खोलते-खोलते वे हर्षसे चिल्ला उठे—'आखिर पकड़े गये।'

साथी ने पूछा—'क्या है?'

उन्होंने पढ़ा—'भगतसिंहको आज फाँसीपर लटका दिया गया है……।'

'बस?'

'बस ।'

साथी मुंह बनाकर बोले—'केवल समाचार है, कुछ नहीं बन सकता ।'

पर वे हताश नहीं हुए पूछा—'क्या तुम्हारे पास चाँदका फाँसी अंक है ?'

'जी नहीं ।'

'पण्डितजी के पास होगा !'

'मैं नहीं जानता !'

'आह ! तुम नहीं जानते, मैं जानता हूँ । वे क्रांतिकारी हैं और तुम्हारे मित्र भी ।'

मुझे क्रोध आ गया । मैंने कहा—'सुन नहीं रहे, वे रामायण का पाठ कर रहे हैं ।'

'क्रांतिकारी क्या ऐसे ही होते हैं ?'

'बिलकुल ऐसे ही'—थानेदार मुस्कराकर बोले—'मेरे कई क्रांतिकारी मित्र मन्दिर में पूजा किया करते थे ।'

और फिर हँसकर बोले—'आप भी तो आर्यसमाजी हैं !'

'जी हाँ ।'

'और मैं भी हूँ ।'

वे मुस्कराकर नम्रतासे बोल रहे थे और साथ ही साथ काम भी कर रहे थे । पुस्तक पलटते-पलटते वे फिर चौंके । उनके हाथमें रवि बाबूकी पुस्तक 'रूस की चिट्ठी' है ।

बोले—'यह क्या है ?'

'रवि बाबू लिखित रूस की चिट्ठी ।'

'रवि बाबू महान् कवि थे यह ठीक है, पर पुस्तक का सम्बन्ध रूस से है ।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? रूस साम्यवादी देश है, ब्रिटेनका दुश्मन है । उसकी किताबें पढ़ना राजद्रोह है ।'

मैं नहीं बोला। वे ही बोले—'आप सरकारी नौकर हैं?'

'जी।'

'खूब पढ़ते हैं।'

'जी।'

'यशपालको जानते हैं? क्रांतिकारी यशपाल जो बडा सुंदर लेखक है।' और कहते कहते वे फिर हर्ष से फुदके। बोले—'तो आप यशपालके मित्र हैं? और साथी से कहा—'हमारा परिश्रम सफल हुआ।'

क्या है—'साथी बोला।'

'देखिये यशपालका पेड इनके पास है। वह इनके पास ठहरता रहा है।' मैंने देखा उनके पास एक लेटर पेड था। मै हँस पड़ा; बोला—'ये यशपाल एक वकील हैं और दिल्ली रहते हैं।'

'लखनऊ नहीं?'

'जी नहीं।'

वे फिर हताश हुए, लेकिन पराजित नहीं। उन्होंने प्रत्येक पुस्तकको ध्यानसे देखा। 'साम्यवाद' और 'रूस' उनके भूत बन गये थे। पर दुःख है वे कुछ न पा सके। वे अब छतपर जा पहुँचे। झाँककर पण्डितजीको देखा। पाठ बन्द हो चुका था और वे रसोईघर में थे। पूछा—'अकेले हैं?'

'जी हाँ।'

'यानि क्रांति करनेकी पूरी तैयारी है।'

मैंने कहा—'इनके पिता जिलेदार थे और चाचा थानेदार।'

थानेदार हँस पड़े—'इसी कारण तो बचे हैं।

और मुझसे मुड़कर बोले—'देखिये मैं आपको नेक सलाह देता हूँ। आप सरकारी नौकर हैं, आपकी नौकरी छूट जायेगी। आप अनुचित लोगों से सम्बन्ध मत रखिये।'

'मेरा किसीसे सम्बन्ध नहीं है।'

'आप जानें।'

और वे नीचे आ गये। मेरी डायरी और रूस सम्बन्धी पुस्तकोंको फिर देखा। साथी से सलाह ली। बोले—'कानून आपके पक्षमें है। व्यर्थ ही आपको क्यों कष्ट दिया जाय। इसलिए पुस्तकें लौटाता हूँ। आप भी याद करेंगे कोई तलाशी लेने आया था। लीजिये हस्ताक्षर कर दीजिये। और फिर धीरेसे कहा—'पण्डितजीका ध्यान रखिये।'

मैं बोला—'आप क्या कह रहे हैं? मैं तो उन्हें मूर्ख समझता हूँ।'

वे हँस पड़े, बोले नहीं। साथी ने कहा—'मूर्ख ही ऐसा काम किया करते हैं। उनमें डर नहीं होता।'

और वे चले गये। मैंने एक बार अपने अस्तव्यस्त घरको देखा और फिर देखा मोहल्लेको. जिसके प्राण लौट आये थे, पर मेरे पास आनेका साहस अभी किसी में नहीं था। उन्हें अचरज था—मैं गिरफ्तार क्यों नहीं हुआ। परन्तु तब उस ओर ध्यान नहीं दिया। मेरे मस्तिष्क में पण्डितजी तेजीसे उभर रहे थे। मैं उन्हें मूर्ख समझता था और पुलिस क्रांतिकारी। कैसी विडम्बना है? क्या अण्ट-सण्ट बातें करना ही क्रांति है? क्या...मैं? आगे सोचूँ कि 'पण्डितजी स्वयं सशरीर मेरे सामने आ उपस्थित हुए। उनकी आंखोंमें गर्व था, पर क्रोध नहीं। उसके स्थान पर प्रसन्नता थी। गद्‌गद् होकर बोले—'तो यह बात थी!'

मैंने देखा—'उनके हाथोंमें एक बड़ी थाली है। उस पर रुमाल ढका है।'

वहीं फर्शपर उसे रखकर कहा—'कुछ मिला।'

'कुछ नहीं।'

मैं जानता था तुम देवता हो, पर दुनिया देवताओं को ही तंग करती है। उसका स्वभाव ही ऐसा है। पर सच मानना, आज मेरा खून बढ़ गया है। मुझे गर्व है, मेरे मकानमें एक शेर-दिल इन्सान रहता है।'

फिर बड़े जोरसे हँसे—'डरे तो नहीं?'

'जी, डरना क्या?'

'मैं जानता हूँ, तुम नहीं डर सकते। तभी तो तुम्हें मकानमें बसाया था। मैं ऐसे-वैसोंको कभी नहीं रखता। अच्छा देखो खीर बना लाया हूँ। जल्दीसे निबटकर खाना शुरू करो। रोटी बनाता हूँ।'

'पण्डितजी ?'

'उसमें बात ही क्या है। देर हो गयी है, तुम्हें दफ्तर जाना है। मुझे खुशी है, अब यहाँ दो क्रांतिकारी रहते हैं।'

और कहते कहते फिर हँसे—'दो क्रांतिकारी, साले जानते नहीं, अब भारत का बच्चा-बच्चा क्रांतिकारी बननेवाला है। उन्हें खुद क्रांतिकारी बनना होगा। भगवान् मेरा जाने, निशिकान्त ! ये पुलिसवाले साले बम बनाने और डाका डालने वालों को ही क्रांतिकारी समझते हैं। असली क्रांति तो निडर होने और जालिम के सामने झुकने से इन्कार करने में है। मुझे खुशी है, तुम नहीं डरे। तुम सच्चे क्रांतिकारी हो…'

और फिर सदाकी भाँति पण्डितजी क्रांतिकारी की न समाप्त होनेवाली व्याख्या करनेमें प्रवृत्त हो गये, परन्तु अचरज यही था कि मैं उस दिन पण्डितजी का तनिक भी विरोध नहीं कर सका।

———

विष्णु

परिवर्तन

●

निशिकान्त बहुत देर से विचारों में डूबता-उतरता आ रहा था। क्रोध और झुंझलाहट के कारण उसके माथे की सलवटें गहरी हो गई थीं। और उसके मन की अवस्था उथले समुद्र के समान थी। वह इसी ट्रेन से देहली जा रहा था। उसकी स्त्री और बच्चा गाड़ी में बैठ चुके थे। गाड़ी छूटने में काफी देर थी। यद्यपि वह बहुत बड़ा जंकशन नहीं था, फिर भी वहां खासी चहल-पहल थी। स्टेशन भी एक छोटी-सी दुनिया के समान है, जहाँ भिन्न भिन्न आकृति, मनोवृत्ति और वेष-भूषा के लोग एक ही स्थान पर नज़र आते हैं। चिड़ियों की भांति उनकी अलग अलग बोलियां सुन कर मन में कल्पना जाग उठती है, और कौतुहल के कारण आंखें बहुत देर तक उनका पीछा करती रहती हैं। कभी सौंदर्य की जीती-जागती तस्वीरें, कभी ऐश्वर्य और विलास की पुतलियां, कभी बदसूरती और गरीबी की नंगी मूरतें सिनेमा के चित्रों की तरह आंखों के आगे से गुजर जाती हैं। दिल कभी श्रद्धा से उमड़ पड़ता है, क्योंकि एक बड़ा लीडर उधर से गुजरा है और उसकी जय के नारों से आकाश गूंज उठा है। कभी उसी दिल में वासना उमड़ उठती है, क्योंकि सौंदर्य और विलास की एक जीती-जागती मूरत सन्नाटे के साथ कंधे को छूती हुई निकल गई है। लवेण्डर और इतर की महक से नाक भर जाती है, क्षण बीतता है, दिल में घृणा पैदा हो जाती है, क्योंकि श्मशान से उठकर आया हुआ एक कंकाल, एक निहायत गंदा और बदबूदार चिथड़ा लपेटे, आपके आगे हाथ पसारे खड़ा है। अभी यह घृणा दूर नहीं होती कि करुणा उमड़ आती है। क्योंकि एक स्त्री अपने बच्चे को पढ़ने के लिए दूर भेज रही है; क्योंकि एक लड़की अपने मां-बाप से सदा के लिये बिदा हो रही है।

यह स्टेशन की बातें हैं, जो दुनियाँ का एक छोटा-सा चित्र है या सिनेमा

का विश्व-व्यापी दृश्य। जहां सुख, दुख, भय, करुणा, पाप और पुण्य सब साकार हैं, और जहां आंखों वाले के लिये कहानी कहने के अंनत प्लाट भरे पड़े हैं।

लेकिन वह इन सब की ओर से आंखें बंद किये कुछ और ही देख रहा है।

जिस तरह दुनिया में रहने वाले प्रत्येक मानव के मन में अपना ही विचार होता है उसी तरह उसे भी अपना ही विचार था और इसी विचार में वह डूबा हुआ था कि उसके एक अत्यंत परिचित बंधु ने उसे पुकारा–'हैलो निशिकान्त !' परन्तु वह तनिक भी टस से मस नहीं हुआ।

आगन्तुक ने पास आकर कहा—सो रहे हो मिस्टर निशिकान्त !

निशिकान्त चौंका—अरे तुम !

हां, मैं हूँ।

माफ करना, मैं कुछ सोच रहा था, और यह अचरज की बात है कि मुझे तुम्हारी ही आवश्यकता थी।

मेरी ?—आगन्तुक ने कुछ रस लेते हुए कहा।

जी हां, एक विकट समस्या है, जिस पर तुम्हीं ठीक-ठीक रोशनी डाल सकते हो।

आगन्तुक हंस पड़ा—मैं धन्य हुआ ! क्या बात है वह ?

वह जरा धीरे से बोला—तुमने सुना होगा परसों सी० आई० डी० ने मेरी तलाशी ली थी।

तुम्हारी तलाशी ? क्या कहते हो ?

कह तो रहा हूँ परसों डिफेंस ऑफ इण्डिया ऐक्ट के आधीन मेरी तलाशी हो चुकी है।

'लेकिन मैं यकीन नहीं कर सकता। तुम तो सरकारी नौकर हो !'

'यही तो बात है। सरकारी नौकर होते हुए भी मुझे यह जिल्लत उठानी पड़ी है। सिर्फ अपने अहिंदू मित्रों के कारण।'

आगन्तुक का अचरज अब ढीला पड़ गया था। उसने कहा— तो तुम कहना चाहते हो कि परसों डिफेन्स ऑफ इंडिया ऐक्ट के आधीन तुम्हारी तलाशी हुई है और उसका

कारण तुम्हारे अहिंदू मित्र हैं ?

जी हां, तुमने सी० आई० डी० वालों से पूछा था ?

जी हां, पूछा था; पर उन्होंने नहीं बताया।

जी हाँ, फिर ?

निशिकान्त आगन्तुक के और भी निकट आ गया, और धीरे-धीरे कहने लगा —उसकी आँखें तेज थीं, और वाणी दृढ़ । वह बोला—मैंने गुप्त रूप से पता लगाया है । एक-दो अर्जी रोज मेरे विरुद्ध सरकार और सी० आई० डी० के दफ्तर में जाती है । जिस समय मेरी तलाशी का आर्डर हुआ था, लगभग २०० अर्जियां सी० आई० डी० के दफ्तर में मेरे विरुद्ध थीं ।

अच्छा ! आगन्तुक अचरज से बोला ।

यह तो तब है जब कि मैं राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रखता । धर्मों के झगड़े मुझे अच्छे नहीं लगते । मैं तो केवल मानव धर्म का प्रेमी हूँ ।

बड़ी कमीनी जात है ।

बेशक ! मैं तो समझता था, इन्सान सब एक हैं, परन्तु देखता हूँ, इन लोगों की बदमाशी की कोई हद नहीं है । मुस्कराकर बोलते हैं, और ऐसा स्वांग भरते हैं कि जैसे इनसे बढ़ कर हमारा और कोई दोस्त नहीं है ।

आगन्तुक बोला—'मैं तो सदा से कहता आ रहा हूँ कि सांप की दोस्ती ही क्या ? न जाने कब काट खाय । परंतु तुम लोगों ने सदा ही मेरा विरोध किया, मुझे गालियां दी । तास्सुबी कहा, और............!

निशिकान्त बीच में ही बोल उठा—'तुम्हारी बात ठीक है, परंतु बिना अनुभव के पता नहीं लगता । मैं तो अब भी मनुष्य से घृणा नहीं करता, परन्तु परसों वाली घटना ने मुझे धरती पर ला पटका है । मेरी आंखों में खून बरस रहा है और मुझे आश्चर्य है, खुदा या परमात्मा जैसी कोई वस्तु इस संसार में है भी ?'

'लेकिन तुमने क्या सोचा है ?'

'यही तो कहता हूँ'—और निशिकान्त ने बहुत धीरे धीरे कान में कहा—'दिल्ली

जा रहा हूँ। वहां से प्रबंध करूंगा कि दो तीन अर्जी रोज उन अहिंदू मित्रों के विरुद्ध सरकार और सी० आई० डी० को पहुँचे। प्रमाण दूंगा। देखता हूँ कब तक सुख की नींद सोते हैं। जेल में बंद करवा दूंगा। उन्होंने भी सांप को छेड़ा है।

कहते कहते उसके माथे की सलवटें फिर गहरी हो उठीं, और घृणा आंखों में साकार हो उठी। आगंतुक ने भी उसी तरह कहा—बेशक यह ठीक है। मैं तुम्हारी मदद करूंगा। कब तक लौट रहे हो?

'अगले हफ्ते इसी दिन आऊंगा।'

'तो मैं परसों दिल्ली मिलूंगा, और........... '

वे दोनों चौंक पड़े। बातों ही बातों में न जाने कब गाड़ी ने सीटी दी, कब गार्ड ने हरी झंडी दिखाई। गाड़ी चल पड़ी। उसकी पत्नी ने घबरा कर बाहर देखा, वह शीघ्रता से उचक कर गाड़ी की पटरी पर खड़ा हो गया और अंदर चला आया। गार्ड ने गुस्से से भर कर कहा—अगर ऐक्सीडेंट हो जाता तो?

पत्नी बोली—अगर गिर पड़ते तो? उसने किसी बात का जवाब नहीं दिया चुपचाप पत्नी के पास जा बैठा। पल भर में ही यह सब हो गया। गाड़ी ने स्टेशन की चहल-पहल को पीछे छोड़ दिया। अब वह हरे भरे खेतों के बीच तेजी से दौड़ रही थी। दूर से वृक्ष, नाले, नहर, और ऊंचे नीचे टीले पास आकर पीछे चलते गये। दो तीन कुत्ते खेतों में आकर ट्रेन के साथ दौड़ने लगे, परंतु दो-तीन मिनट में ही सांस तोड़ बैठे। केवल खट-खट पट-पट की आवाज़, पटरी के साथ लगे हुए तार, डिब्बे भरे हुए मुसाफिर, और उनकी अलग अलग आवाज़ों के अतिरिक्त कोई और वस्तु न तो ठीक-ठीक दिखाई पड़ती थी, और न कुछ सुनाई देता था। उसका दिमाग अभी तक उन्हीं बातों से भरा हुआ था, और आने वाले षड्यंत्र का चित्र उसकी आंखों के सामने खिंच गया था।

उसका बच्चा सो रहा था। उसने भी धीरे धीरे अपना सिर दिवार के सहारे टिका कर आंखें मीच ली, ताकि निश्चिन्त होकर उन सारी बातों पर विचार कर सके, जिन्होंने उसके मन की शांति को नष्ट कर डाला था और उसे खून के आंसू रुला रही थी।

विष्णु

वह देर तक इसी अवस्था में बैठा रहा कि सहसा चौंक पड़ा। किसी ने पुकारा—

'मिस्टर निशिकान्त ! सुनते हो क्या हुआ आज ?'

'क्या ?' —वह बोला।

मि० 'शाह' डिफेंस ऑफ़ इंडिया ऐक्ट में गिरफ्तार कर लिये गए।

सच ?

जी ! मैं अभी उन्हें जेल में छोड़ आया हूँ। उनकी तलाशी हुई थी और पुलिस का विश्वास है कि वे देश के दुशमनों से मिले हुए हैं।

निशिकान्त बड़े जोर से हंस पड़ा। उसके सामने जेल का चित्र साकार हो उठा। उसने देखा, उसके सामने जेल की चिर-परिचित खिड़की है, जिसके बाहर लोगों की भीड़ लगी है। सब अपनी अपनी बात कह रहे हैं।

एक ने कहा— सरकारी आदमी ऐसा काम करेंगे, यह कौन सोच सकता है ?

दूसरा बोला— अजी आदमी के भीतर क्या क्या भरा है, यह कौन जानता है?

फिर भी मि० शाह से यह आशा न थी—तीसरा बोल उठा।

अवश्य किसी की शरारत है।

'बेशक ! देखो न कांग्रेस वालों से कितनी घृणा करता था।

अजी सब को गालियां सुनाता था।

जिसके जी में जो आया उसने कहा, परन्तु उसका दिल खुशी से उमड़ा पड़ता था। उसने धक्के दे दे कर सब को पीछे हटा दिया और देखा खिड़की के सामने मि० शाह सिर झुकाये एक स्टूल पर बैठा है उसके चेहरे पर पीलापन छा रहा है और आंखें डर से भरी हुई हैं। उसने पुकारा—मि० शाह, यह क्या हुआ ?
किस बदमाश की शरारत है ?

मि० शाह ने आंखें उठा कर निशिकान्त को देखा। चाहा मुस्करा दे, लेकिन बेबसी की हलकी-सी छाया चेहरे पर फैल गई। वह इतना ही बोला—तकदीर में ऐसा ही लिखा था दोस्त !

'फिर भी......... !'

मैं कुछ नहीं जानता।

तभी मि० शाह के दोस्त रिश्तेदार आ गये। उसने गर्व से भर कर उन्हें देखा। सहानुभूति के नपे तुले पुराने शब्द उसे याद थे, लेकिन छाती के भीतर जो आनंद उमड आया था उसे दबाने में बड़ी कठिनाई जान पड़ रही थी। वह बहुत देर तक वहीं खड़ा रहा। भीड़ हट गई। दोस्त भी चले गये। पता लगा, परसों चालान पेश होगा। वह भी आदाब अर्ज करके लौट पड़ा। तभी सुन पड़ा—

'सुनो तो !'

वह फिर मुड़ा। लेकिन अब वहां न जेल थी, न मिस्टर शाह। वह चौंक पड़ा। उसने देखा — वह ट्रेन में बैठा है, और उसकी पत्नी कह रही है — सुनो जंकशन आ गया है। पानी ला दो।'

गाड़ी धीमी पड़ गयी थी। बार २ पटरियां बदलने की खड़ खड़, चारों तरफ बिखरे पड़े माल, ऐक्सप्रेस, पैसेंजर डाक गाड़ियों के डिब्बे, केबिन और क्रासिंग के पास लोगों की भीड़ से साफ मालूम हो रहा था गाड़ी जंकशन पर आ गई है। उसने आंखें मल कर पत्नी से कहा—मैं सो गया था।

जी आप तो दो घंटे से सो रहे हैं। वह उठा, और पानी के लिए लोटा निकालने लगा। तभी उसकी नजर सामने की सीट पर पड़ी—एक मुस्लिम वयोवृद्ध सज्जन बैठे अनोखी अदा से मुस्करा रहे थे। वह न जाने क्यों एक दम सोच गया, ये लोग सदा ही इस तरह मुस्कराते हैं। इनकी मुस्कराहट में विष भरा रहता है। दिल में विष छिपा कर वाणी से अमृत बरसाने में ये बड़े कुशल हैं। न जाने कैसे ? तभी न जाने क्यों सहसा वे वृद्ध पुरुष बड़े जोर से खिलखिला पड़े। और नीचे झुक कर उन्होंने एक बच्चे को उठा लिया।

वह जोर से पत्नी से बोला—'मुन्ना कहां है ?

पत्नी हंस पड़ी। वही तो है। बहुत देर से उधर खेल रहा है। डाढ़ी नोच डाली बेचारों की।

अब निशिकान्त ने स्पष्ट देखा— हजरत उस वृद्ध पुरुष की गोद में बैठे हंस रहे थे। कभी

उनकी डाढ़ी खींचने को उचकते और कभी कमीज़ के बटनों पर झपटते । हाथ में शायद चश्में का घर था, जिसे आप बेतकल्लुफी के साथ जोर जोर से सीट में मार रहे थे।

उसे यह बुरा लगा। बोला– क्यों जाने दिया उसे ? इन्हीं लोगों के कारण तो मुझे मुसीबत उठानी पड़ रही है ।

पत्नी बेबस-सी बोली— मैं क्या करती जी ? उनकी लड़की उठा कर ले गई । तभी एक जोर का क़हक़हा लगा। बच्चे ने वृद्ध की टोपी उतार कर फैंक दी थी और खल्वाट खोपड़ी में बड़े जोर से चश्मे का घर दे मारा था ।

निशिकान्त ने यह सब देखा और झपट कर बच्चे को उठा लिया।

वृद्ध बोल उठे— आपका बच्चा है ?

जी ।

बड़ा नटखट है।

पास बैठे दूसरे सज्जन बोल उठे—बच्चा नटखट ही ठीक होता है ।

तीसरे ने पूछा—क्या उम्र है जी इसकी ?

साल भर ।

खूब दौड़ता है।

सेहत बहुत अच्छी है ।

खूबसूरत कितना है !

सबने अपने अपने मन की बात कही । बच्चा उसकी गोद से उतर कर फिर वृद्ध के पास चला गया । निशिकान्त रोकना चाह कर भी न रोक सका और मुस्करा कर पानी लेने चला गया। लौट कर देखा, १३–१४ वर्ष की एक लड़की उसके बच्चे को लिये बैठी है । उसकी गोदी में फल थे और स्टेशनों पर बिकने वाले एक दो खिलौने। बच्चे ने एक हाथ में सेब संभाला था और दूसरे से केला, जिसे खा जाने का वह व्यर्थ प्रयास कर रहा था । लड़की हंसती हंसती बोली — खाना भी नहीं आता गधे को !

और छील कर केला उसके मुंह में भर दिया । बालक हंस पड़ा। लड़की

वृद्ध पुरुष से बोली—देखो बाबा ! केला कैसे खाता है । अपना नन्हा तो छूता भी नहीं ।

वह मुस्कराकर रह गए । लड़की बड़े चाव से बच्चे को खिलाती और खाती रही । पत्नी ने यह सब देखा। धीरे से बोली—उसके साथ खा रहा है । बुलालो न !

निशिकान्तने भी चाहा बच्चे को उठा ले, पर न जाने क्या विचार आया; बोला—बच्चे के लिए जात-पांत भेद नहीं होता । खा भी लेने दो, कितने प्रेम से खिला रही है !

पत्नी चुप हो गयी । वह बहुत देर तक उन दोनों को देखता रहा । सोचता रहा—लड़की बच्चे को कितना प्यार करती है ! शायद यह नहीं जानता कि मनुष्य होकर भी यह बच्चा उससे कितना दूर है । इसके भाई बन्दों ने मुझे बेइज्जत किया है और मुझे नष्ट करना चाहा है, लेकिन यह वृद्ध और दूसरे लोग ? शायद यह लोग समझदार हैं, शायद ये मुझे जानते नहीं । सभी इंसान तो एक जैसे नहीं होते, इंसान इंसान है कहां ? ये तो रङ्ग रङ्ग के लेबिल लगाये इंसान की मूर्तियां हैं । फिर भी भले आदमी तो सभी जगह होते हैं । ये लोग कितनी मोहब्बत दिखला रहे हैं । नहीं ! यह धोखा है, मैं उसे नहीं छोड़ूंगा ।

निशिकान्त न जाने कब तक सोचता रहा कि अचानक चौंक पड़ा । किसी ने चिल्ला कर कहा—अरे बच्चा गिर गया ! ट्रेन रोको, ट्रेन रोको !

उसने गाड़ी के खुले दरवाजे की ओर देखा, लड़की उसी ओर लपक रही है । उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया । वह चीख उठा—'बच्चा ! किस का बच्चा ?'

पत्नी घबराकर उठी—मुन्ना कहाँ है ?

वे जब तक संभले तब तक गाड़ी रुक गई, वृद्ध ने जंजीर खींच ली थी, स्टेशन पर शोर मच गया । गाड़ी अभी प्लेटफार्म से निकली नहीं थी । बहुत से लोग नीचे उतर पड़े । वह सब से आगे था । उसने जो कुछ देखा उससे उसके रोंगटे खड़े हो गये । लड़की प्लेटफार्म पर चित्त पड़ी थी, और उसके दोनों हाथ गाड़ी के पास नीचे लटक रहे थे । उन हाथों में उसने बच्चे को संभाला था, जो बेतहाशा चीख

रहा था।

लोगों ने बच्चे और लड़की को हाथों में उठा लिया। लड़की के हाथ जख्मी हो गये थे, और बच्चे के सिर में चोटें लगी थीं, चोटें हल्की थीं और दोनों जीते जागते थे। क्षण-भर में ही यह सब हो गया। वह ठीक ठीक सोच भी न सका, आखिर यह सब कैसे हुआ ? उसके मस्तिष्क में भयङ्कर द्वन्द मचा हुआ था। वह लोगों की बातें सुन रहा था—वे कह रहे थे— बचाने वाला बहुत बड़ा है।

'जी हाँ ! उसी की माया है, नहीं तो गाड़ी के नीचे आकर भी कोई बचता है ?'

'लड़की साहसी है साहब !'

'वह उसका भाई था।'

'तभी तो साहब बहिन का प्रेम अद्‌भुत होता है।'

निशिकान्त के मुंह से निकला-'भाई बहिन !' और सिर से पैर तक एक सिहरन सी दौड़ गई। वह गिर पड़ता, अगर लोहे का डंडा उसके हाथ में न आ जाता। उसने डंडे को कस कर पकड़ लिया, और उसके मुंह से फिर निकला... 'भाई बहिन ! फिर तो चारों तरफ ' भाई बहिन, भाई बहिन ' की पुकार उठने लगी।

आगे बात इतनी ही है, दिल्ली जाकर निशिकान्त ने अपने मित्र को पत्र लिखा– उसे दुःख है वह अब अपने अहिंदू मित्र के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करना चाहता।

———

निशिकान्त

●

धीरे-धीरे स्वप्नके समान वे सब बातें निशिकान्त को फिर याद आने लगीं धुंधले-धुंधले चित्र उसके सामने के शून्य में तिरमिरों की तरह उड़ने लगे। उसे याद आया, किसीने उसे बुज़दिल कहा था। वह उसी तरह लेटे-लेटे बड़बड़ाया—'क्या मैं बुज़दिल हूँ ?'

पास ही कोई बोल उठा—'बेशक,तुमने जो रास्ता पकड़ा है, वह बुज़दिलों का रास्ता है।'

निशिकान्त चौंक-सा उठा—'तुम······तुम फिर आगये !'

दूसरा निशिकान्त हँसा—'मैं जाता कहां हूँ ? सदा तुम्हारे भीतर ही तो रहता हूँ। मैं कहता हूँ कि यह रास्ता तुम्हें सुख नहीं पहुंचा सकता, तुम्हारे मनकी वासनाको शान्त नहीं कर सकता।'

निशिकान्त फुसफुसाया—'मैं समझा नहीं।'

'समझे नहीं !'—दूसरा निशिकान्त बड़े ज़ोर से हँस पड़ा। वह हँसी बड़ी तेज़ आवाज़ पैदा करती कमरे में गूँज उठी। उसे लगा जैसे कुहरे में सब कुछ धुंधला नज़र आता है, उसी तरह इस आवाज़ में भी एक अस्पष्ट स्वर-मात्र है और यह अस्पष्टता उसके दिल में एक अजीब भय पैदा करती जारही है।

आवाज़ फिर गूँज उठी—'तुमने मकड़ी का जाला देखा है ?'

'हाँ, देखा तो है। हमारी लापरवाही से न-जाने कितने जाले हमारे घरों के कोनों में लगजाया करते हैं।'

'और उसमें फंसकर आज़ादी के लिए तड़पती हुई मक्खी को भी देखा है ?'

निशिकान्त बेबसी में भी हँसा—'हाँ बचपन में न जाने कितनी बार फड़फड़ाती मक्खी को देखकर चाहा था कि उसे निकाल दूँ, लेकिन कौतूहल ने कभी हाथ नहीं

विष्णु

उठने दिया और देखते-देखते वह मक्खी मकड़ी से निगल ली गयी।'

निशिकान्त की हँसी विषाद में बदलती गयी, लेकिन वह आवाज़ उसी तरह उग्रतासे बोलती गयी—'अच्छा तो सुनो, यह मनुष्य उसी मक्खी के समान है और तुम भी……।'

'जानता हूँ,' निशिकान्त ने कहा—'लेकिन वह जाला……?'

'बुद्धिके तर्क और अन्तरात्मा की पुकार—ये सब मकड़ी के जाले हैं। इनमें फँसकर मनुष्य मक्खी की तरह आज़ादी के लिए तड़पता रहता है और………'

'ओह………!' निशिकान्त एकदम लापरवाही से बोल उठा—'मैं समझा। यह मकड़ी तुम्हीं हो, जो मेरे लिए जाला पूरती रहती हो और मुझे उसमें फंसाकर अपनी क्षुधा शांत करती हो।'

इस अचानक पैदा हुई लापरवाही ने उसकी वाणीमें तेजी भरदी। वाणी की तेज़ी ने शरीरमें कम्पन पैदा कर दिया। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें एकदम चमक उठीं और तेज़ी से उठने की चेष्टा करने लगा। लेकिन जैसे ही उसकी चेष्टा में गति पैदा हुई, वह कांप उठा। उसके चारों ओर रात्रिका गहरा अंधकार फैला हुआ था। कहीं दूर कुत्ते किसी अस्पष्ट ध्वनि पर चौंककर भूंक उठते थे। खिड़की से झाँकते हुए नीले आसमान के सफेद और सुनहले तारे, घोर निराशामें आशाके दीपक की तरह, झिलमिल-झिलमिल कर रहे थे। उसने दोनों हाथों की हथेलियों से अपनी आँखों को मला। फिर अपने चारों ओर शून्य अंधकार में ताका। लेकिन जैसे-जैसे उसे समझ आती गयी, उसका मन ग्लानि से भरता गया। वह होश में आकर भी उस अदृश्य आवाज़ के प्रभाव को जो मकड़ी की तरह उसपर जाला पूरती आरही थी, दूर न कर सका।

अभी पहली संध्या को ही तो उसने यशोदा से वादा किया था—'आज रातको जरूर आऊँगा।'

वह मुस्करायी और उसकी लजीली आँखें किसी अज्ञात ज्योति से पूरित होती हुई नीचे की ओर झुक गयी थीं।

उसने फिर कहा—'राह देखोगी?'

वह बोली—'आयेंगे तो राह क्यों न देखूँगी, भाईसाहब !'

तभी जैसे इसने पूछना चाहा — 'तुम मुझे भाई साहब क्यों कहती हो ?' लेकिन न जाने क्या सोच-समझकर वह चुप होगया और फिर क्षण भर बाद बोला—'तो जरूर आऊंगा।'

इसके अतिरिक्त कुछ और कहने को जैसे उसे कोई विषय ही नहीं मिल रहा था ! और अचरज तो यह है कि उसकी आवाज़ बड़ी धीमी होती जा रही थी। इस धीमेपन पर उसे स्वयं विश्वास नहीं आ रहा था। यशोदा इतनी देर तक नीचे ही देखती रही, कभी आँख उठाकर सीधे देखा भी तो नहीं। केवल एक उड़ती नज़र उस पर डाल सामने के लैम्प-पोस्ट को देखने लगी। कोई उस समय होता तो सम्भव है यही जानता कि यह लड़की निशिकान्त से ज़रा भी संबंध नहीं रखती।

निशिकान्त भी लैम्प-पोस्ट की दूसरी तरफ़ इस तरह खड़ा था मानो बड़ी व्यग्रता से उन मोटर और ताँगों के निकल जाने की राह देख रहा हो, जो किसी बारात के कारण रुक गये थे। दूर आगे से अंग्रेज़ी बाजे की तेज़ आवाज़ आरही थी और एक छोटी-सी भीड़ तांगों की दूसरी तरफ़ इस तरह झुक आयी थी जैसे परनाले का मुंह बन्द हो जाने पर पानी रुक जाता है। जैसे ही बारात आगे बढ़ी, वह भीड़ भी बड़ी तेजी से इधर-उधर बिखर गयी। निशिकान्त भी तब लापरवाही से आगे बढ़ गया। बढ़ते-बढ़ते उसने पीछे की ओर देखा। तभी यशोदा ने भी उस ओर दृष्टि घुमायी। आँखें मिलीं—जैसे बिजली चमक गयी !

निशिकान्त ने सोचा—सुन्दर है। यह सोचते ही एकबार फिर उसके शरीर में मादकता उभर आयी। हृदय में हल्का-हल्का उल्लास उमड़ा। छाती में कम्पन-सा हुआ, परन्तु मन न-जाने क्यों, भयातुर हो उठा। यह बात नहीं कि निशिकान्त ने आज पहली बार ही जाना हो कि यशोदा सुन्दर है। परिचय होने से बहुत पहले निशिकान्त ने यशोदा को देखा था और माना था कि यशोदा सचमुच सुन्दर है : उसके मुख का हलका गुलाबीपन, आँखों की तरल मादकता, सुनहली लाली लिये ओठों पर सीधे संकेत करती हुई नासिका और सबसे अधिक उसकी लापरवाही से उड़ती हुई साड़ी के भीतर

लम्बे, चिकने, काले बाल जो बन्धन में भी असंयत.....!

एक दिन यह सब देखकर वह कुछ अधिक विचलित होगया था और धीरे-धीरे वह विकलता इतनी तीव्र हो उठी थी कि यह चिल्ला उठा था—पापी, कमीने, एक अपरिचित युवती के प्रति इतने गन्दे विचार........!

तू धूर्त है !

तू कमीना है !!

तू नीच है, निर्लज्ज है !!!

उसके हाथमें जो पुस्तक थी, वह उसने बड़े ज़ोर से फेंक मारी। फिर सीधा पलङ्ग पर जाकर इस तरह लुढ़क गया जैसे कोई बड़े दिनों का सूखा पेड़ अचानक हवा के तेज झोंके से पृथ्वी पर लुढ़क जाता है।

पत्नी ने आकर पूछा—'जी कैसा है ?'

आँखें खोलकर पत्नी को उसने देख लिया, पर बोला कुछ नहीं।

पत्नी फिर बोली—'मैं पूछती हूँ, लेट कैसे गये ?'

फिर पास आकर बैठ गयी। उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर बोली—'उठो तो........!'

तब निशिकान्त के जी में आया कि कह दे—'अभागिन नारी, मेरी विकलता का कारण तू है ! तू है जिसने मुझे आग में हाथ देने को मजबूर किया है !'—लेकिन कहा उसने कुछ भी नहीं। उठकर बैठ गया। कपड़े उतार डाले। फिर बोला—'चलो, मैं खाना खाने आ रहा हूँ।'

इसके बाद उस दिनके लिए निशिकान्त जैसे सब कुछ भूल गया। वह उतावलापन, वह व्यग्रता और वह मादकता, सब-न-जाने किस ओर उड़ गयीं। पहले भी उसके साथ ऐसा ही हो चुका था। यशोदा जैसी कितनी ही सुंदर-असुंदर यौवनके भार से लचकतीं हुई युवतियाँ उसने देखीं और देखकर उनको अपनी बनाने की तीव्र लालसा उसके मनमें उठी। इन्द्र धनुष के समान अनेक सुनहले और रुपहले चित्र उसके हृदयाकाश पर खिंचते और जरा-सी देरमें ही पानीके बुलबुलों और ताशके पत्तोंके महल के

समान वे सब ढह जाते, जैसे नींद खुलने पर स्वप्नों की दुनियां उड़ जाती है। तब उसका मन आत्मग्लानि से भर जाता और वह अपने को कोसना शुरू कर देता—'मैं कितना नीच हूँ। अपनी स्त्रीके होते दूसरी नारियों से मानसिक व्यभिचार करता हूँ। मैं वासनाओं के जालमें फंसता जा रहा हूँ। मुझे पाप-पुण्य, नीति-नियम, किसीका भी ध्यान नहीं। मैं पापी हूँ, मुझे आत्महत्या.........!'

'आत्महत्या ? हाँ, आत्महत्या !'

'लेकिन आत्महत्या भी तो पाप है !'

'बेशक'—वह दृढ़ता से कहता—'आत्महत्या पाप है, लेकिन व्यभिचार उससे भी बड़ा पाप है।'

इसके बाद वह स्वयं ही बड़े ज़ोर से कांप उठता। सामने जो भी वस्तु होती, उसे पैरोंसे बड़े जोरसे ठोकर मारकर दूर फेंक देता और उलझी हुई तागों की कुकड़ी की तरह विचारों के जालमें इस तरह फंस जाता कि उसे रास्ता ही नहीं मिलता। तब कभी-कभी नीचे से आकर रजनी उसके पास बैठ जाती और प्रेम तथा स्नेहभरे स्वरमें उलाहना देती—'हरवक्त क्या सोचा करते हो ? कभी बात ही नहीं करते.........!'

हठात् वह झुंझलाहट-भरी आँखें उसकी ओर उठाता तो लगता जैसे लम्बे सफ़र की थकान से दर्द करते हुए शरीर को किसी ने अपने कोमल करों से धीरे-धीरे सहलाना शुरू कर दिया है। वह सजीव हो उठता जैसे फूल की पंखुड़ियाँ खुलती जारही हों।

'रजनी सुंदर है.........!'

'सच.........?'

'हाँ, उसकी आँखों में भी मद है, होठों में लाली है और स्वर में कोमल मिठास.........!'

एकाएक वह बोल उठता—'रजनी !'

रजनी पास खिंचती कहती—'जी.........!'

'तुम सुंदर हो।'

'ओह......!' रजनी मुस्करा उठती और निशिकान्त तब.........!

विष्णु

एकदिन न-जाने किस अज्ञात भाग्य-रेखाने निशिकान्त के इस काल्पनिक जीवन में वास्तविकताके धुंधले चित्र बनाने शुरू कर दिये। उस दिन पूर्वके आकाशमें प्रकाश के आगमन की सूचना मिल चुकी थी। धुंधली रोशनी बीचके रङ्गमञ्च पर बिखर चली थी। वातावरण में मन्द-मन्द वायु हिलोरें ले रही थी और अधिकांश संसारवासी एकबार आँखें खोलकर फिर से निद्रादेवी की मदभरी हलकी-हलकी थपकियों का शिकार होते जारहे थे। निशिकान्त उस समय हाथ में बाल्टी थामे अलसायी देह, डेयरी की ओरसे लौट रहा था। मस्तिष्क में रात के स्वप्नों की धुंधली-सी याद बाकी थी। चारों ओर सन्नाटा अंगड़ायी तोड़ने लगा था। कुत्ते भूंकना बंद करके इधर-उधर विश्राम की टोहमें घूमने लगे थे। कुओं पर पानी भरनेवाले या सैरके शौकीन बाबू या डेयरी से दूध लानेवाले आदमी हलकी-हलकी पद-चाप करते चले जारहे थे। तभी सहसा पासकी एक गलीसे एक घोड़ी बड़ी तेज़ी से तूफ़ानकी तरह दौड़ती हुई आई और उसके पाससे ऐसे निकलगयी जैसे भूकम्प का तेज़ धक्का बड़े जोर से गड़गड़ाहट करता हुआ निकल जाता है। वह संभले-संभले कि वातावरण एक चीत्कार से भर उठा। कोई बड़े ज़ोर से रोया। कई आवाज़ें एक साथ काँप उठीं—'क्या हुआ, अरे क्या हुआ·········?'

यह सब एक क्षण में होगया। दूसरे क्षण निशिकान्त ने दौड़कर एक बालिका को उठाया, जो बुरी तरह सड़क पर गिरकर चीख़ उठी थी। उसके पास एक बाल्टी पड़ी थी। जिसका सब दूध बहकर नाली में जा रहा था। दूध के साथ ही रक्त की एक पतली-सी रेखा भी उसी तरफ़ बहजाने की चेष्टा में थी। निशिकान्त ने बड़े स्नेहसे उसे गोदीमें उठा लिया। बोला—'तुम्हें चोट लगी है···रोओ मत···बस, चुप हो जाओ···
······कहाँ जाओगी······?'

लेकिन बालिका थी कि रोये चली जा रही थी। उसकी आयु लग-भग सात वर्ष की होगी—गोरा रङ्ग, बड़ी-बड़ी आँखें, साधारण परन्तु स्वच्छ कपड़े। जान पड़ता था कि किसी अच्छे घरकी है। फिर पूछा—'तुम कहाँ जाओगी, बोलो·········?'

इसी समय पीछेके मकान के किवाड़ बड़े ज़ोर से खुले और काँपती हुई आवाज़ आयी—'शारदा ! शारदा !!'

गोद की बालिका और भी चीख पड़ी।

'शारदा.........?'

'अम्मा.........!'

निशिकान्त तब उसे गोदमें लिये, उसकी माँ के पास ले आया। बोला—'घोड़ी की चपेट में आगयी है।'

'चोट तो नहीं लगी ?'

'हाँ, देखता हूँ।'

वह अंदर चला गया। लालटेन के प्रकाशमें उसने देखा बालिका के पैर में घोड़ी की नाल का एक अच्छा ज़ख्म बन गया है। उसी ज़ख्म से बहकर खूनकी धार सड़क पर बह चली थी। निशिकान्त ने जब तक ज़ख्म को संभाला, माँ ने चौके में आकर पुकारा—'यशोदा, ओ यशोदा, जल्दी उठ। देख तो शारदा को क्या हुआ ?'

ऊपर से आवाज़ आयी—हूँ...ऊँ...ऊँ...!'

माँ तेज़ हुई—'हूँ ऊँ-ऊँ करती है, यहाँ आकर देख, बहन चीख रही है।'

'क्या हुआ माँ ?' इस बार यशोदा हड़बड़ाकर उठ बैठी।

'नीचे भी आ.........!'

निशिकान्त ने कहा—'आप घबराइये नहीं, घरमें रेशम हो तो ज़रा-सा फूँक लीजिए। मैं ज़ख्म में भर दूँगा। और देखिए, दूध हो तो ले आइए।'

'दूध.........!'

'ओह, दूध तो यह लारही थी। वह बिखरगया। खैर, आप रेशम फूँकिए। दूध का प्रबन्ध भी हो जायगा।'

यह सब करते-करते निशिकान्त उस घर और घरवालोंके बारेमें ज्यादा-से-ज्यादा जानकारी हासिल करने की चेष्टा करता रहा। उसने देखा, यह यशोदा तो वही लड़की है जिसे उसने अनेक बार सड़क पर देखा है और जिसे देखकर उसके मनमें बार-बार उठा है कि वह सुंदर है, मोहक है। और इस समय—अब तो, आलस्य और अस्तव्यस्तता के कारण, उसमें और भी मादकता समा गयी है......!

विष्णु

छि-छि, इस समय भी ऐसी बात……?

रेशम फूंकते-फूंकते माँ बोल उठी—'तुम न आते तो न-जाने क्या होता !'

'जी…!' कहकर वह कुछ चौंका—'क्या कहा जी आपने ?'

उसकी ओर बिना देखे, बिना सुने वह बोलती रही—'भगवान् ने तुम्हें न-जाने कहाँ से भेज दिया है कि……।

'जी, मैं दूध लारहा था।'

'यहीं रहते हो ?'

'जी हाँ……।

'क्या करते हो ?'

'जी, नौकरी करता हूँ।'

'परमात्मा तुम्हें सुखी रखे। तुम बड़े दयालु हो। नहीं तो कौन किसको उठाता है ?'

'जी ज़रा पट्टी तो दीजिए,' उसने कहा।

यशोदा पट्टी लेकर आगयी। बोला—'बाँध दीजिए।'

यशोदा चुपचाप बाँधने लगी, लेकिन बेचारी ठीक-ठीक नहीं बाँध सकी। निशिकान्त ने उसके हाथसे लेकर स्वयं बाँधते हुए कहा—'देखिए, ऐसे बाँधिए !'

पट्टी लेते-लेते उसका हाथ यशोदा के हाथ से छू गया। दोनों चौंक पड़े। यशोदा का मुंह लज्जासे लाल हो आया। बोली—'चोट ज्यादा लगी है क्या ?'

'जी नहीं, इतनी ज्यादा नहीं है।'

'डाक्टर के यहां जाना होगा ?'

'हाँ, सबेरे इसे डाक्टर के यहाँ ज़रूर ले जाइए।'

फिर कुछ क्षण के लिए शांति छा गयी। यशोदा पट्टी बाँधती रही और निशिकान्त लालटेन के प्रकाश में कभी शारदा, कभी यशोदा और कभी कमरे को देखता रहा। दोनों सुंदर, स्वस्थ और सभ्य। कमरा साधारण—मेज़, कुर्सी, चारपाई, लालटेन, तसवीरें, कैलेण्डर, बक्स, आलमारी और ऐसे ही कुछ और अल्लम-गल्लम……।

एकाएक यशोदा ने माँके वाक्य दोहरा दिये—'आप बड़े दयालु हैं······!'

निशिकान्तने अनसुना करके पूछा—'आपके पिताजी हैं ?'

'नहीं।'

'तो······?'

'बड़े भाई परीक्षा देने लाहौर गये हैं।'

'कबतक लौटेंगे ?'

'एक हफ़्ते में।'

'तब फिर······?'

'आप डरिए नहीं। माँ शारदा को स्वयं डाक्टर के यहाँ ले जायेंगी। माँ इसे बहुत प्यार करती हैं।'

निशिकान्त समझा। वह मुस्कराया—'शायद आपको नहीं करतीं ?'

यशोदा फिर लाल हुई। पट्टी वह बाँध चुकी थी। शारदा के गालों से आँसुओं को पोंछती-पोंछती बोली—'माँ प्यार का पार्थिव रूप है। प्यार के बिना माँ, माँ नहीं रहती।'

'क्या रहती है ?' निशिकान्त चकित विस्मित मशीन की तरह पूछ बैठा।

'मैं नहीं जानती,' यशोदा ने दृढ़ता से कहा। फिर पुकारा—'माँ, दूध हुआ ? जल्दी देना······।'

यह कहती स्वयं उठकर यशोदा बाहर चली गयी और निशिकान्त के रहते फिर नहीं लौटी। दूध लेकर स्वयं माँ आयी। निशिकान्तने कटोरा हाथसे लेकर शारदा को उठाया। पूछा—'दर्द कम है न ?'

'हाँ, बालिका दबे स्वरमें बोली।

'यह लो, दूध पीलो।'

शारदा ने दूध पीलिया और निशिकान्त उठकर अपने रास्ते पर चला गया। जाते-जाते कह गया—'इसे उठाना मत। डाक्टर के यहाँ गोदमें लेजाना। देखना होगा, हड्डी तो ठीक है।'

विष्णु

'हड्डी…!' माँ काँप उठी।

'जी नहीं, डरिए नहीं। टूटी नहीं है, फिर भी देखना होगा।'

और इसके बाद जब माँ शारदाको डाक्टरके यहाँ लेजा रही थी तो वह फिर आ गया। बोला—'लाइए, मैं ले चलता हूँ।'

'नहीं बेटा, नहीं……।'

'लाइये न……?'

यहीं तक नहीं, इसके बाद जबतक यशोदा का भाई लाहौर से नहीं लौटा, तब तक निशिकान्त बराबर दो दफा उनके घर जाता रहा। माँने हर बार उसे कृत-कृत्य कर देखा, हर बार उसकी आँखोंसे आंसुओं के साथ आशीर्वाद बरसे। यशोदा से भी उसका परिचय बढ़ा। हृदय खुले। लज्जा दूर हुई। लेकिन जब भी वह यशोदा को देखता, उससे बातें करता, तो वह इस बात को नहीं भुला पाता कि यशोदा सुंदर है, युवती है…! लेकिन फिर तर्क करता—'सुंदर है, युवती है, तो फिर……?'

'तो फिर क्या ? सौन्दर्य और यौवनका उपयोग तो उसके भोग में ही है।'

'लेकिन तू भोगनेवाला कौन है ?'

'मैं, पुरुष……?'

'हाँ, मैं पुरुष, वह नारी……।'

छी-छी ! तब उसे कोई धिक्कारने लगता—'तू कितना कमीना है। इतने पवित्र वातावरण में जहाँ माँ आँसुओं से प्रेम और आशीर्वाद की वर्षा करती है, जहाँ तू स्वयं अपनी सेवासे भावुक प्रेम और सहानुभूति का परिचय देता है, वहाँ भी तू……?'

निशिकान्त तब कांप उठा। उसका अन्तर अकुला-अकुला कर हा-हा कार कर उठता। तभी यशोदा कहती होती—'सभी आदमी एक जैसे नहीं होते। देखिये, एक आप भी तो हैं…… !'

'जी हाँ, एक मैं भी हूँ…!' निशिकान्त इस तरह बोलता कि यशोदा चौंककर देखती और निशिकान्त फिर कहता—'अच्छा तो अब मैं जा रहा हूँ !'

'जी नहीं, खाना खाकर जाइए।'

'अब नहीं।'

'अच्छा, आपकी पत्नी कबतक आयेंगी ?'

'यही एक दो महीने में।'

'तब मैं आपके घर आऊंगी।'

निशिकान्त एकदम कह उठता—'अभी चलिए न ?'

'अब······?'

'हाँ······।'

'अब क्या वहाँ दीवारोंसे बातें करूँगी !'

'मैं तो हूँ······।' कहकर वह काँपता, यशोदा चौंकती—छि-छि, यह कैसा अलगाव, कैसा विभेद, कैसा पागलपन ? लेकिन यशोदा परिस्थिति को संभाल लेती। कहती—'आप यहाँ तो आते ही हैं। यह भी तो आपका ही घर है।'

'सच···!' वह भी संभलता।

तभी माँ आकर कहती—'कल रतन आजायेगा। तू जरूर आना। खाना भी यहीं खाना, समझा !'

निशिकान्त रोज़ आता था। उस दिन भी आया। खूब बातें कीं और चला गया। सबको लगा कि यह निशिकान्त बहुत दिनसे उनका जाना-पहचाना, उन्हीं में का एक, उन्हीं के परिवार का एक अविच्छिन्न अङ्ग-मात्र है। लेकिन इसी सीमा पर आकर निशिकान्त एकदम पीछे लौट गया। दिन पर दिन बीतते गये, वह फिर यशोदाके घर नहीं गया। यह बात नहीं कि यशोदा उसे मिली नहीं। सड़क पर अब भी वह उसे नज़र आजाती है। अब भी हाथ जोड़कर नमस्ते कर लेती है। अक्सर पूछ लेती है—'आप आये नहीं ? माँ आपको पूछ रही थीं।'

निशिकान्त कह देता—'आजकल ऑफ़िस में काम ज़्यादा है। फ़ुरसत नहीं मिलती। फिर किसी दिन आऊंगा।'

जैसे-जैसे दिन बीते, जैसे-जैसे वह यशोदा की तरफ खिंचा, वैसे-वैसे उसके भीतर संघर्ष भी तेज़ होता गया।

विष्णु

उसने दृढ़ होकर कहा—'नहीं, अब मैं वहाँ नहीं जाऊंगा।'

'क्यों नहीं जायगा ?'

'मेरा उसका संबंध क्या है ?'

'है क्यों नहीं—तू पुरुष, वह नारी !'

'लेकिन वह मुझे भाई कहती है।'

तब कोई हँस पड़ता—'प्रेयसी होने से पहले हर एक नारी बहिन होती है !'

'नहीं नहीं......!'

'नहीं कैसे ? माँ, पत्नी,प्रेयसी, बहिन,पुत्री ये सब नारी जीवन की भिन्न-भिन्न सीमाओं के संकेत चिह्न-मात्र हैं।'

'यह ठीक हो सकता है, परंतु सीमा और मर्यादा का उल्लंघन करने वाले पापी होते हैं।'

'हाँ-हाँ......!' वह एक अट्टहास करता जान पड़ता—'तो तुम पाप को पहचानते हो ? बहिन का प्रेयसी बनना पाप है, यौवन को पुकार पाप है...!'

'हाँ-हाँ' वह तेज़ होता—'यह सब पाप है !'

दोनों हाथोंसे मुंह ढंककर क्षण भरके लिए कुछ सोचता और फिर उसी तेज़ी से कहता—'कलको तुम माँको प्रेयसी बनानेको कहोगे।'

आवाज़ उसे और भी चिढ़ाती—'तू मूर्ख है। प्रेयसी के यौवन, सौंदर्य, कामना और वासनाका पूर्ण उपभोग करने के बाद ही माँ ममता और स्नेहके आँसुओं का वरदान पाती है। तब माँमें प्रेयसी बनने की न तो योग्यता ही रहती है और न उसे ज़रूरत ही।'

निशिकान्त आगे सोचनेमें असमर्थ, झुंझलाहट और पराजय से हारा-थका-सा, सबकुछ भूलकर पुस्तकों में शांति पाने की चेष्टा करता, परन्तु मन उसे पढ़ने नहीं देता। कभी विद्रोह, कभी वासना और कभी स्वयं यशोदा उसके सामने आकर खड़ी हो जाती और कहती लगती—'मेरी ओर देखो। क्या मैं सुंदर हूँ ? क्या मैं मोहक हूँ ? मैं भी तुम्हें चाहती हूँ। मैं भी तुम्हें देखा करती हूँ। तुम भी सुंदर हो !'

तभी निशिकान्त शून्यमें ताकता खुशीके मारे हँस पड़ता–'सच···?' और फिर दूसरे ही क्षण पुस्तक बन्द करके उठ जाता। जीवन स्वयं एक सुंदरी के समान है— किसी उपन्यास में पढ़ा यह वाक्य उसे याद आ जाता और इसीलिये उस दिन, लैम्प-पोस्ट के नीचे जब तक बारात के कारण बहुत-सी मोटरों व ताँगों ने उसका रास्ता रोक लिया था, यशोदा को देखकर उसने यह निश्चय कर लिया था कि आज वह जरूर-जरूर प्रेम की भीख मांगकर रहेगा।

यशोदा बोली—'आप आये नहीं भाईसाहब, माँ याद करती हैं।'

'माँ याद करती हैं!' उसने मुस्कराकर पूछा—'तुम नहीं करती?'

यशोदा लाल होकर रह गयी।

निशिकान्त ने कहा—'आज रात को जरूर आऊंगा?'

'......... ....'

'राह देखोगी'

'आयेंगे तो राह क्यों न देखूँगी!'

'ठीक·········!'

घर जाकर निशिकान्त ने इसके बाद निश्चय किया आज वह जरूर यशोदा के घर जाकर उससे कहेगा—'यशोदा, तुम सुंदर हो!'

वह कहेगी—'सच······?'

'बेशक, मैं तुम्हें रात-दिन देखते रहना चाहता हूँ।'

'तो देखा करो!'

'सच·········?'

'हाँ, मैं भी तो तुम्हें देखते रहना चाहती हूँ।'

जैसे-जैसे अन्धकार बढ़ता गया, निशिकान्त उसी तरह कल्पनाओं के मन-मोहक चित्र बनाता रहा। इसी रङ्गमें डूबे-डूबे उसने खाना बनाया और खाया। ऊपर जाकर स्विच दबाकर कमरेको प्रकाशसे भर दिया। इसके बाद गुनगुनाता हुआ इधर से उधर, उधर से इधर, कमरेमें ही चहल-क़दमी करने लगा। पासके मकानसे धीमी-धीमी आवाज़

आकर ऊपर फैलती जारहं कभी कोई बड़े ज़ोरसे बूटों की आवाज़ करता हुआ निकल जाता था। बाहर छतपर खिड़की से हो कर प्रकाश की कई किरणें इस तरह चित लेट गयी थीं कि जैसे प्राण निकल जाने पर किसी सुंदरी का शरीर लेट जाता है। लेकिन निशिकान्त सब ओरसे आंख-कान बन्द किये अपनी प्रेयसी से मनमानी बातें करनेमें तन्मय था—'यशोदा, कैसा आश्चर्य, यह सब हम आजसे पहले क्यों न जानपाये !'

'क्या......?'

'यही कि हम एक-दूसरेको प्रेम करते हैं।'

'प्रेम बोलना नहीं जानता।'

'बेशक, वह सदा मौन रहता है।'

'और मौन वाणीसे अधिक शक्तिशाली होता है।'

निशिकान्त प्रभावित हो उठा—'यशोदा, तुम रूपवती, तुम बुद्धिमती......'

'और तुम कवि।'

'काश, मैं कवि होता, चित्रकार होता!—सदा तुम्हें अपने सामने बिठाये चित्र बनाया करता, कविता लिखा करता।'

'अब लिखो।'

'अब......?'

'हाँ-हाँ- जरा समीप आओ। मेरी आँखों में, देखो, कितना मद भरा है। क्या यह तुम्हें कवि नहीं बना देगा?'

'यशोदा, मेरी यशोदा......!'

'नहीं, दूर न हटो। पास आओ......और पास आओ। हाँ अब देखो, मेरी भौंहों का बांकापन। क्या वह तुम्हें चित्र बनाने के लिए निमन्त्रित नहीं कर रहा?'

निशिकान्त जैसे किसी अज्ञात प्रभावसे दबता गया। प्रेयसी के नेत्रों के मद ने, ओठों की सुरा ने, भुजाओं के बंधन ने उसे पार्थिव से अपार्थिव बना दिया। वह उड़ती वायु के समान बोला—'प्रेयसी, प्राणवल्लभे, मैं कवि, मैं चित्रकार और तुम कविता, तुम चित्र...

···नहीं नहीं, मैं कविताका शब्द-मात्र, चित्रका रङ्ग केवल······!'

धीरे-धीरे वाणी लुप्त होती गयी। गतिमें स्थिरता आने लगी। निशिकान्त के अपार्थिव रूपने प्रेयसीके काल्पनिक सौंदर्य-शरीर को अपनी भुजाओंमें बांधा, कसा, चाहा कि ओठों को ओठों से मिलाये। प्रेयसी उनकी भुजाओं में इस तरह लुढ़क गयी जिस तरह निद्रा आने पर शरीर लुढ़क पड़ता है। निशिकान्त ने सोचा—यह निद्रा, यह मदभरी निद्रा! ओ प्रेयसी, यह तुम्हें शत बार, सहस्र बार, सौंदर्यमय बना रही है। अनुपम सुंदरी, तुम स्वयं सौंदर्य हो! और उसने अपने ओठोंको धीरे-धीरे उसके रक्तवर्ण मधुर ओठों पर···········

वह काँपा, चौंका—भूकम्प का धक्का-सा लगा········

यशोदे·····यशोदे·····न·····तुम·····तुम·····रजनी·····तुम·····ओह····· और तुम·····मैं·····तुम···········

निशिकान्त पागल-सा शून्य में ताकने लगा। लेकिन वहाँ यशोदा न थी, न रजनी। केवल प्रकाश से जगमगाते कमरे में निशिकान्त कल्पना की दुनिया में डूबा-डूबा दिवाल से सटा खड़ा था और ठीक उसके सामने था एक चित्र जिसमें उसकी पत्नी रजनी लज्जा से दबी-दबी कुर्सीपर बैठी थी और ठीक उसके सामने प्रफुल्ल मुद्रामें ताकता खड़ा था वह स्वयं। तब उसका मन ग्लानिसे भर आया— इतनी तेज़ी से कि उसकी आँखों में धुंधलापन छागया। उसके मस्तिष्क में एक ऐसा कड़वा विचार आकर जमगया कि सामने पड़े हुए पलङ्गके बिस्तरे को उठाकर ज़ोरसे कोनेमें फेंक दिया। दोनों हाथों से मुंह छिपाकर खोड़ पलङ्ग पर ही लेट गया, लेकिन उसकी आँखोंने न तो देखना छोड़ा, न मस्तिष्क ने सोचना। उसकी आँखें अब भी एक प्रेयसी और उसके प्रेमीको देखरही थीं। अंतर केवल इतना था कि वह प्रेयसी यशोदा न होकर रजनी थी और वह प्रेमी निशिकान्त न होकर एक अज्ञात युवक था जिसे उसने कभी नहीं देखा था।

वह बड़े जोरसे चिल्लाया—'नहीं-नहीं यह कभी नहीं हो सकता। यह झूठ है!'

'क्या झूठ है?'

'रजनी किसीसे प्रेम नहीं करती। वह मेरी है, मेरी········!'

'और यशोदा······?'

'यशोदा ?······नहीं······मैं यशोदा को नहीं जानता । मेरा उसका कोई संबंध नहीं है !'

'बुज़दिल'—वह फुसफुसाया ।

'हाँ, तुम बुज़दिल । तुम चाहते हो कि तुम्हारी पत्नी किसीकी प्रेयसी न बने और न सारे संसारकी सुंदरियाँ तुम्हारी प्रेयसी, तुम्हारी अङ्कशायिनी होजायें !'

निशिकान्त को किसी ने झंझोड़ डाला । वह हाँफता-हाँफता बोला—'लेकिन तुम हो कौन·········?'

'निशिकान्त'—आवाज़ गम्भीर होकर बोली ।

'निशिकान्त ?············'—निशिकान्त आश्चर्य से प्रतिहत बड़बड़ाया—'और मैं·········?'

'तुम निशिकान्तका पार्थिव रूप !'

उसे लगा जैसे कोई अव्यक्त अमूर्त पदार्थ-सा आकर उसके शरीर में इस तरह समाता जारहा है जिस तरह शून्य वातावरण में वायु आकर फैल जाती है । तब उसने भयातुर,लज्जित,लांछित की तरह आँखों को और भी ज़ोर से दबालिया, पैरों को और भी जोर से समेटलिया और गुड़मुड़ होकर इस तरह लेट गया जैसे अपने पार्थिव शरीर को शून्य में एकाकार करना चाह रहा हो !

कितना झूठ

●

निशिकान्त की आखें रहकर सजल हो उठती थीं और वह मुंह फेर कर सड़क की ओर देखने लगता था, मानो अपने आंसुओं को पीने की चेष्टा कर रहा हो। सड़क पर सदा की तरह अनेक नर-नारी पैदल, तांगे पर, कार पर, साइकिल या दूसरे यानों पर, इधर से उधर और उधर से इधर आ जा रहे थे। उनमें अमीर-गरीब, स्वस्थ-अस्वस्थ, सुन्दर-असुन्दर, दाता-भिखारी, अच्छे और बुरे, सभी थे। कुछ चुपचाप चल रहे थे, कुछ ऊँचे स्वर में चिल्ला रहे थे, जिसकी गूंज दूर-दूर तक फैल गयी थी। कुछ फैशन की तितलियाँ — यौवन की प्रतिमाएं, कुछ खोये जीवन की याद लिये वृद्धायें, कुछ अल्हड़ बालक और बालिकायें, कुछ रात के सिनेमा में सुने हुए गीत को गाने की चेष्टा करते हुए मस्त युवक, कुछ कुछ युग के भार से दबे हुए सनरसीदा लोग सभी आते और लिप्त-अलिप्त से, एक अदृश्य चक्कर में घूमते-घूमते, चले जाते और यह सब देखकर निशिकान्त हठात् सोच बैठता—आखिर यह बात क्या है? यह सृष्टि क्यों बनी है? क्यों उस अव्यक्त अगोचर परमात्मा को यह खब्त सवार हुआ? क्यों उसने मकड़ी की तरह यह ताना-बाना बुन डाला? और फिर इस जाले में कितना तेज आकर्षण? स्त्री और पुरुष एक-दूसरे की तरफ इस प्रकार खिंचते हैं जैसे कभी वे एक रहे हों और फिर किसी के क्रूर हाथों द्वारा कभी अलग कर दिये गये हों और जब जैसे फिर एक होना चाहते हों, बिलकुल उस काल्पनिक अर्द्ध-नारीश्वर की तरह! लेकिन वे अभी तक एक हो नहीं पा रहे हैं– केवल एक क्षणिक, अपरिमेय, अद्भुत और आनंदमय आवेग के बाद अलस-उदास और धीर-गम्भीर होकर अपने ही समान अपने अनेक स्वरूपों का निर्माण करने लग जाते हैं—स्वयं स्रष्टा बन कर नियंता की बेवकूफी को दोहराने लगते हैं और इस कार्य में उन्हें इतना आनंद मिलता है कि मृत्यु के समान प्रसव-पीड़ा भी उनके प्राणों में उन्माद पैदा कर देती है। उनका मिट्टी का घरौंदा जब

विष्णु

उनके अपने स्वरूपों की किलकारियों से गूंजने लगता है तो आनंद विभोर होकर कह उठते हैं—यही तो स्वर्ग है। और इस अद्भुत सृष्टि क्रम का एकमात्र कार्य है जीवन के एकमात्र और अंतिम सत्य को प्रमाणित करना— मृत्यु जीवन का एक मात्र सत्य है—मृत्यु......!

निशिकान्त हठात् चौंक उठा—तो क्या रजनी भी मर जायगी......बेशक मर जायेगी...! वह फिर कातर हो उठा। जिन आंसुओं को पीने के लिए उसने इतना सोच डाला था, वे फिर दुगने वेग से उमड़ आये। उसने गरदन को जोर से झटका दिया और इस बार फिर अपनी आँखें उस विशाल बिल्डिङ्ग की ओर घुमा दीं, जिसके एक कमरे में उसकी पत्नी रजनी को लेकर मृत्यु और जीवन के बीच एक भयंकर संघर्ष छिड़ा हुआ था। उसने देखा, उस ब्रह्मलोक (मैटिरनिटी हॉस्पिटल) में अंदर ही अंदर एक सुप्त कोलाहल, एक मधुर वेदना, एक मीठा दर्द, जागता चला आ रहा है। सफेद बगुले जैसे कपड़ों में कसी नर्सें, तेजी से खटखट करती हुई डाक्टरनियाँ, स्ट्रेचर या इनवालिड चेयर थामे सहायक दाइयाँ और बार-बार दरवाजे पर आकर पुकारती हुई मिसरानी—सभी एक नियम में बंधे, सदा की तरह, मशीन के समान अपना काम करती चली जाती हैं। अभी दाई ने आकर पुकारा—'मालती का घर वाला है !'

बेंच पर ऊंघता-सा एक व्यक्ति बोल उठा—'जी, मैं हूँ।

'लड़का हुआ है !'

'लड़का...!' नींद जैसे खुल गई—"दूध लाऊं ?"

"हाँ, इसी वक्त—और फल भी," उसने कहा और शीघ्रता से चली गई।

क्षण बीता। लान में अनेक स्त्री-पुरुष आये और गये। इतने में दाई फिर बाहर आई—"करुना !"

एक स्त्री दौड़ी—"जी...!"

"लड़की !"

स्त्री के साथ एक अधेड़ सज्जन भी थे। सुनकर सन्न से रह गये। दूसरे क्षण बोले—"लड़का और लड़की, एक ही तो आना था। जाओ, मैं दूध लाता हूँ।"

निशिकान्त रोज इसी तरह सुनता है और देखता है भागे हुए स्त्री पुरुष आते हैं और खिलौने की तरह एक अपना ही इतिहास लेकर चले जाते हैं। रात कोई दो बजे एक स्त्री आई। बोली—"मेरे बच्चा होने वाला है।"

नर्स ने कहा—"बेड खाली नहीं है। और कहीं जाइये।"

"लेकिन...!" स्त्री के पति ने घबराकर कहा।

नर्स खिजी, मुस्कराई, स्त्री को लेकर अंदर चली गई और कोई बीस मिनट बीते होंगे कि लौटकर आई — "जाइये, दूध ले आइये। आपको लड़का हुआ है।"

लेकिन साथ ही निशिकान्त ने देखा एक युवक बहुत दुखी, संतप्त, अलग एक कोने में ऐसे बैठा है जैसे अभी रो पड़ेगा।

उसने पूछा—"क्या बात है ?"

वह चौंका-सा—"क्या बताऊं क्या बात है।"

"आखिर...!"

"पाँच दिन से दर्द उठ रहे हैं! बच्चा नहीं होता।"

"आपकी पत्नी है!?"

"जी...!"

"और कौन है?"

"कोई भी नहीं।"

उसने गम्भीर होने की चेष्टा की और ठीक इसी समय आवाज़ लगी—"रानी के साथ कौन आया है ?"

"मैं हूँ" — वह युवक शीघ्रता से आगे बढ़ा।

नर्स ने कहा— "बच्चा अटक गया है। आपरेशन होगा।"

निशिकान्त ने देखा, उस युवक के पैर लड़खड़ाये और वह बेंच पर ऐसे लुढ़क गया जैसे दरख्त से कोई टहनी टूट कर गिर पड़ी हो। नर्स फिर आई और एक पर्चा पकड़ाते हुए बोली — "घबराइये नहीं। सब ठीक हो जाएगा। जाकर दवा ले आइये।"

विष्णु

वह उठा और निशिकान्त से बोला—(वाणी उनकी रुंध गई थी)— "सच कहता हूँ, इस बार रानी बच गई तो......!"

निशिकान्त ने बीच में टोक कर कहा — "जाइये। इंजेक्शन ले आइये। जो कुछ आप करेंगे, वह सब दुनियां जानती है।"

वह गया वहाँ एक तीखी करुणाभरी आवाज़ गूंज उठी — "मा तुमसे बढ़ कर मेरा सहारा और कौन है ? तुम मा हो, तुम जगन्माता हो—"

देखो रोते नहीं...!

एक अधेड़ पुजारी माथे पर त्रिपुण्ड लगाये, गले में राम नामी साफा डाले, करुणा से घिघियाता, नर्स के पैरों पर झुका जा रहा था — "मैं लुट जाऊंगा, मेरी बाग-बाड़ी उजड़ जायेगी, मेरे छोटे बच्चे धूल में मिल जायेंगे......!

सब कुछ कहने सुनने में अभ्यस्त नर्स ने तेजी से कहा—"शोर मत मचाओ। इलाज हो रहा है।"

और फिर दूसरे ही क्षण धीमा पड़ कर बोली—" उसे आज पहले से आराम हैं। सब्र करना चाहिए, सब कुछ ठीक होगा।"

"ठीक होगा, मा...!"

हाँ नाँ में जवाब दिये बिना नर्स फिर चली गई। तभी लान के पीछेवाले बंगले से बड़ी डाक्टरनी तेजी से स्टेथस्कोप लिये निकली। निशिकान्त दौड़कर उसके पास गया। डाक्टरनी ने देखा, रुकी और बोली—"क्या बात है ?"

"रजनी के..."

"हाँ-हाँ, वह आज टिकी है। खतरा पूरा है, परन्तु आशा है..."

"आपकी कृपा है, लेकिन मैं कहता था, आप पैसे की चिंता मत करना...।"

डाक्टरनी लापरवाही से बोली—" पैसा हम लोगों के लिये चिंता का विषय कभी नहीं रहा। आप...!"

और फिर बड़ी तेजी से वह अंदर चली गई।

पास खड़े एक सज्जन ने पूछा—"केस बहुत सीरियस है ?"

"जी, दस दिन से न जीती है, न मरती है ।"

"बच्चा हुआ था ?"

"जी, बच्चा तो ठीक हो गया..."

"फिर... ?"

"फिर क्या जी, अपने कर्म का लेख !"

बच्चा होने के सात दिन बाद इतना रक्त बाहर निकल गया कि ब्लड प्रैसर जीरो पर आ गया । खून के इंजेक्शन लगने की बात चल रही है ।"

"खून के इंजेक्शन !" साथी अचरज से बोले ।

"जी हाँ," निशिकान्त ने कहा और तेजी से उठ खड़ा हुआ । अन्दर से उसकी मा आ रही थी । उसके चेहरे पर घबराहट थी और आँखों में तरल निराशा ।

"क्या बात है ?" उसने शीघ्रता से अपने को संभाल कर पूछा ।

मा कुछ नहीं बोली, केवल हाथ हिला दिया, मानो कहा – 'क्या पूछते हो, पूछने का विषय ही समाप्त होने वाला है ।'

" फिर उठने लगी है ?"

"भागती है । नर्सों ने बाँध दिया है और दूर कमरे में जहाँ कि..."

"................."

"रह-रहकर कहती है, बच्चा, मेरा बच्चा कहां है ?"

मैंने कहा—"बेटी तेरा बच्चा घर पर है ।" लेकिन मानती नहीं । उठ-उठ कर भागती है । मा रोने लगी । निशिकान्त नीचे देखने लगा । उसका हृदय बैठ गया । आंखें जलने लगी । आंसू अन्दर ही अन्दर धुआं बन कर घुट गये । मा फिर आंसू पोंछती हुई बोली—"मैं घर जा रही हूँ । बच्चे के लिए किसी दूध पिलाने वाली को देखना है, दूध के बिना क्या वह बचने वाला है...!"

लेकिन जैसे ही वह जाने को मुड़ी, निशिकान्त का छोटा भाई तेजी से साइ-किल पर आकर बोला—"जल्दी घर चलो, मा !"

मा चौंककर बोली—"क्यों रे...?"

"चलो तो !"

"आखिर...?"

वह बोल नहीं सका । रो पड़ा ।

बस, निशिकान्त समझा और समझकर हंस पड़ा — "रोता है, इतना बड़ा होकर ! दुनिया में मरना-जीना तो चले ही जाता है...!"

लेकिन मा बावली-सी बोली—"तू कहता क्या है ?"

और फिर पागलों की तरह घर की तरफ दौड़ी । सड़क पर मोटर सन्नाटे से निकल गई । भाई ने साइकिल संभाली और निशिकान्त सदा की तरह हाथ कमर के पीछे बांधे हुए टहलने और सोचने लगा—"वह दुनियां, यह सृष्टि, जीवन से मृत्यु से, मृत्यु से जीवन; यह कैसा अद्भुत, यह कैसा निर्माण चक्र ! यह प्रेम, यह वासना, इन सबका वही एक अंत......!"

उसका मस्तिष्क चकराने लगा, उसे याद आया कि युद्ध-भूमि के उस महान् दार्शनिक नित्शे ने एक स्थान पर लिखा है—स्त्री एक पहेली है जिसका हल बच्चा है !

इतने में कई नर्सें मुस्कराती हुई उसके पास से निकल गईं। एक ने निशिकान्त को देखा और कहा—"आज रजनी बेहतर है ।"

"थैंक्स, सब आपकी मेहरबानी है !"

"लेकिन उसके बेबी का ख्याल रखियेगा ।"

निशिकान्त एकदम कांपा । नर्स ने उसी तरह कहा—"जब तक आप धाय का इंतजाम करें, तब तक अपनी भावज का दूध ही पिलाइये । रजनी हर वक्त बच्चा-बच्चा कहती रहती है !"

" जी, " निशिकान्त ने कहा—"बच्चा बिल्कुल ठीक है । धाय का प्रबंध कर लिया है ।"

दूसरी नर्स बोली—"कभी यहां भी लाइये ।"

"जरूर लायेंगे जी ।"

वे चली गईं । निशिकान्त की आंखें एक बार फिर आंसुओं से भर आईं ।

वह गुनगुनाया—स्त्री एक पहेली है और बच्चा उसका हल...!

छोटी डाक्टरनी मुस्कराती हुई वहां आई । निशिकान्त को देखकर ठिठकी और अंग्रेजी में बोली—"मि० निशिकान्त, रजनी आज बेहतर है !"

निशिकान्त ने हाथ जोड़े और कृत्य-कृत्य होकर कहा —"बहुत धन्यवाद । वह आपके कारण जीवित है । आप कितनी मेहरबान हैं !"

डाक्टरनी ने सुना अनसुना करते हुए कहा– "उसका बच्चा कैसा है ?"

"बिलकुल ठीक है...?"

"यह ठीक है, लेकिन ध्यान रहे, रजनी बच्चे के लिये जरूरत से ज्यादा चिंतित है ।" फिर दो चार इधर उधर की बातें करके वह चली गई और सन्नाटा वहाँ छा गया । धूप में भी तेजी आने लगी, पर निशिकान्त उसी तरह सोचता हुआ टहलने लगा । परदेश से आई कोई स्त्री एक कोने में खड़ी थी । उसने भी निशिकान्त को देखा । पूछ बैठी—क्यों भैया, बहू का क्या हाल है ?"

"अभी तो चल ही रहा है ।"

स्वर को संयत बना कर वह बोली–"मैं कहती हूँ, इतनी देर जो लगी है, इसी में भला है । यह तो मरने में ही देर नहीं लगा करती । लेकिन बच्चा तो ठीक है न ...?"

"बिलकुल ठीक !" उसने एक दम कहा और फिर चुप हो गया ।

दोपहर भी बीतने लगी । मिलने का वक्त भी आने लगा । फिर कोलाहल शुरू हो गया । नर-नारी फिर बातें करने लगे । इस बार बहुत से बच्चे भी तोतली बानी में अपने छोटे भाई बहनों की चर्चा करने लगे । कुछ थे जो हंस रहे थे, कुछ के चहरों पर चिंता की गहरी रेखा थी । कोई लड़के की बात कहता, कोई लड़की की । कोई मौत की चर्चा भी छेड़ देता । निशिकान्त ने सब की बातें सुनी और अपनी सुनाई, कहा—"भाई साहब, दुनियां का चक्कर इसी तरह चलता है । लड़का-लड़की, जिंदगी-मौत, सुख-दुख—ये सब अपनी अपनी बारी से आया ही करते हैं ।"

" जी, " उसकी बात सुनकर एक बोल उठा—"आप ठीक कहते हैं ।"

दूसरा कहता—"आप कहते तो ठीक हैं परन्तु हमने तो कभी जिंदगी में सुख देखा नहीं..."

एक तीसरा व्यक्ति बीच में ही बोल उठा—"तो आप मर जाइये...!"

बहस तेजी से चलती, लेकिन घंटी बज उठी और भीड़ बड़ी तेजी से अदंर की तरफ भागी। निशिकान्त आज अकेला था। भाई अन्य रिश्तेदारों के साथ जमुना पार गये थे। मा आ नहीं सकी थी। वह अकेला ही चुपचाप रजनी के कमरे की ओर चला गया। उसने देखा — चारों ओर हंसी-खुशी का कोलाहल गूँज उठा है।

केवल सबेरे वाले पुजारी ने व्यग्रता से गुमसुम पड़ी अपनी पत्नी को देखा और रो पड़ा—"सोना, मेरी सोना, तू बोल तो...!"

नर्स चिल्लाई—"खबरदार जो यहां रोये !"

दूसरी तरफ एक युवती ने घबराकर पति से कहा—" मै मर जाऊंगी। यहां डर लगता है।"

दूसरी स्त्री ने पति से पूछा—"बच्चे को देखा है ?"

"नहीं।"

"वह देखो, नम्बर चार पालने में है। बिलकुल तुम पर पड़ा है।"

"सच !" और फिर वे दोनों मुस्करा उठे।

तीसरी स्त्री अपनी भावजों से चुपचाप बातें करने लगी। चौथी स्त्री की मा आई थी। पूछने लगी—"डाक्टरनी क्या कहती है ?"

"ठीक हो जायगा।"

"कब तक ?"

"दो चार दिन लगेंगे !"

पांचवी युवती ने पति से शिकायत की—"तुम बड़े शैतान हो। मुझे किस मुसीबत में फंसा दिया !"

पति मुस्कराया—"दो चार महीने बीत जाने दो, तब पूछूंगा ! "

दोनों हंस पड़े। लेकिन इन सबसे बचकर दूर कमरे में निशिकान्त अपनी पत्नी

के सामने जाकर खड़ा हो गया। सफेद चादर की तरह फूली हुई लाश के सामान रजनी ने उसे आंख उठा कर ऐसे देखा जैसे अबोध बालक अपने चारों तरफ देखता है। उसने शायद मुस्कराना चाहा, शायद मुस्कराया भी—चेहरे पर एक अव्यक्त सा भाव आकर चला गया।

फिर धीरे से बोली—"तुम...?"

निशिकान्त का दिल टूट रहा था, पर उसने अपनी सारी कोमल शक्ति बटोर कर कहा—"अब तो तुम ठीक हो।"

वह बोली नहीं, बायें हाथ को उठाकर जोर से पटक दिया।

"नहीं-नहीं," निशिकान्त ने कहा—"ऐसे नहीं करते।"

रजनी बोली—"बच्चा...!"

वह बोला—"हां, तुम्हारा बच्चा बिलकुल ठीक है।"

"झूठ!"

"नहीं-नहीं, वह घर पर है। उसे दूध पिलाने के लिये धाय रक्खी है।"

वह आंखें गड़ाकर देखने लगी, लेकिन उन आंखों में क्या था, यह कोई नहीं बता सकता। निशिकान्त ने उसकी आँखों पर अपना हाथ धर दिया। कहा—"एक दिन उसे यहां लायेंगे।"

और कहकर उसने महसूस किया कि उसकी आंखों की पुतलियाँ जोर से घूमीं। कुछ गीला-गीला लगा। उसने हाथ उठा लिया आंसू की एक बूंद उसके हाथ से चिपक कर रह गई। उसने हठात् अपने को संभाला। बोला—"रजनी!"

"जाओ...!"

"रस पीओगी?"

"नहीं...!"

"कैसी बातें करती हो, पी लो..."

वाणी जैसे कुछ खुली—"तुम अभी तक गये नहीं? जाओ, नहीं तो ये नर्सें तुम्हें जहर दे देंगी!"

विष्णु

निशिकान्त ने कुछ कहना चाहा, परन्तु वह बाहर चला गया। बाहर वही कोलाहल ! बच्चों की किलबिल किलबिल, स्त्रियों का धारा प्रवाह प्रेम स्नेह और भयभरी चिंता, पुरुषों की गम्भीर मन्त्रणा। कभी नर्सों का खटखट करते आना, दवा पिला जाना कभी इनवैलिड चेयर पर किसी स्त्री का दर्द से कराहते हुए जाना। यह सब देखता देखता निशिकान्त अन्दर के लान में टहलता रहा कि वक्त खतम होने से पहले एक बार फिर पत्नी को देख जाय लेकिन जैसे ही वह अन्दर गया, रजनी ने अजीब घबराहट से भर कर कहा—"फिर आ गये ?"

निशिकान्त बिना बोले सिर पर हाथ फेरने लगा।"

"सब मर गये—नर्सों ने सबको मार डाला !"

"नहीं···!"

"जाओ!···"

"···············"

"सब खत्म — बच्चा भी खत्म !"

"बच्चा बिलकुल ठीक है। तुम देख लेना।"

तभी नर्स ने कहा—"बहुत मत बोलिये मि० निशिकान्त !"

और तब वह दो-चार शब्द सांत्वना के कहकर बाहर चला गया। उसका दिल भर आया। उसने आंसू पोंछ डाले। सब कोलाहल समाप्त हो गया था। केवल रात का चपरासी बरामदे में टहल रहा था। उसने निशिकान्त को देखा "बाबूजी, अब ठीक है न ?"

"कुछ है तो..."

"बस बाबूजी, अब सब ठीक होगा। मैंने इससे बढ़ कर बुरे केस देखे हैं। एक लालाजी आये थे। उनकी लड़की सूजकर मांस का पिण्ड बन गई थी..."

रोज की तरह फिर वह अपनी कहानी सुनाने लगा जिसमें घूम-फिर कर अपनी तारीफ करना उसका लक्ष्य रहता। कहता—"आदमी की पहचान किसी किसी को होती है। सच कहता हूँ, आप हैं जो आदमी की कदर करते हैं। कभी खाली हाथ नहीं आते।

हर वक्त दुआ मांगता हूँ कि खुदावन्द करीम इन बाबूजी का भला करना।"

पूछ बैठा—" बच्चा कैसा है ? "

"बिलकुल ठीक।"

"खुदा का शुक्र है। बहू जी भी बिलकुल ठीक होंगी।"

निशिकान्त कांप उठा न जाने क्यों ? तभी बाहर की सड़क पर खोमचेवाले ने आवाज लगाई। नर्स ने खिड़की से झांककर कहा—"ओ शरीफ !"

"जी हुजूर !" चपरासी भागा।

"खोमचेवाले को जरा बुलाओ। उसके पास चाट है न ?"

लेकिन वह रसगुल्ले बेच रहा था। बड़ी-बड़ी आंखों वाली उस नर्स ने कहा—"हम चाट मांगता है !"

शरीफ ने कहा—"खाइये, मिस साहेब, बड़ा मीठा है !"

"अच्छा तो ले आओ, लेकिन पैसे तुम देना। मेरे पास इस समय नहीं हैं।"

"पैसे !" शरीफ हंस पड़ा —" मेरे पास और पैसे !"

एक क्षण सन्नाटा छा गया। खोमचेवाले ने नर्स को देखा, नर्स ने शरीफ को और शरीफ ने बाबू निशिकान्त को। निशिकान्त का दिल टूटा पड़ा था उसे इन सब से नफरत हो रही थी खोमचेवाले ने फिर कहा—"जाऊं हुजूर ?"

निशिकान्त एक दम बोल उठा—जाओ नहीं, पैसे मैं दूंगा।"

"नहीं-नहीं," नर्स ने शीघ्रता से कहा।

"कोई बात नहीं। अरे, मिस साहब को मीठे रसगुल्ले दो।"

नर्स तब मुस्कराते बोली—तुम बड़े अच्छे हो। रजनी आज बेहतर है। आपका बच्चा कैसा है ?"

निशिकान्त ने कहा—"ओ० के० !" और मुड़कर बोला— "लो शरीफ तुम भी लो !"

"अजी नहीं बाबूजी," शरीफ ने कहा और हाथ फैला दिये।

नर्स थैंक्स देकर मुस्कराती हुई अन्दर चली गई। शरीफ वहीं खड़ा-खड़ा खाने

लगा ।

चारों ओर अच्छा खासा धुंधलापन छाया था। निशिकान्त के दिमाग में कल्पना फिर उभड़ने लगी। सोचने लगा—बच्चे को पत्थर से बांधकर जमुना में डाल दिया होगा...जल के जन्तु उसे खाने दौड़े होंगे...वह मेरा बेटा था...मेरा अङ्ग ...मेरा स्वरूप... मेरे और रजनी के प्रेम का साकार प्रतीक !

और फिर यह प्रेम, यह वासना, यह स्त्री और पुरुष—यह सब जीवन और मृत्यु के बीच एक संघर्ष मात्र...!

शरीफ बोल उठा—"अरे, आप नहीं खा रहे हैं, बाबू जी !"

निशिकान्त चौंका—"मैं ...!"

"हां, आप भी खाइये न ?"

"मेरे पेट में जोर का दर्द है, शरीफ, मैं नहीं खा सकता !"

कहकर निशिकान्त वहाँ से हट गया। उसकी कल्पना कभी उसे अपने निष्पन्द निष्प्रान, जमुना के तल में समाये बच्चे को देखने को विवश करती, जिसे खाने के लिये जीव जन्तु दौड़ पड़े हैं, कभी मृत्यु शय्या पर पड़ी रजनी दिखाई पड़ती जो अपनी खाली आंखें खोले खोई-सी कुछ ढूंढ़ने की व्यर्थ चेष्टा में लगी है और इन कल्पनाओं में डूबा वह चौंक पड़ता जैसे कोई पूछ रहा हो—"बच्चा कैसा है ?"

तभी वह मुस्कराकर उत्तर देता—"बिलकुल ठीक है !"

लेकिन अचरज यह कि इस सारे कम्पाउड में निशिकान्त के अतिरिक्त और कोई नहीं था। उसने गम्भीर होकर अपने आपसे कहा—"रजनी को बचाने के लिये मेरे अन्दर इतनी तीव्र लालसा क्यों, क्यों मैं उसे मरने नहीं देना चाहता, क्यों मैं...?"

और इस 'क्यों' का सम्भापवित उत्तर सोचकर निशिकान्त बड़े जोर से हिल उठा—"नहीं-नहीं......?"

लेकिन उसकी यह नहीं-नहीं भी इस 'क्यों' के सम्भावित उत्तर की सचाई से इनकार नहीं कर सकी !

निशिकान्त का स्वप्न

●

निशिकान्त भारत के मध्य-वर्ग का एक व्यक्ति है । काफी सुंदर गठीला परन्तु शरीर रोगों का घर है । मन उसका अपेक्षाकृत स्वस्थ है, अध्ययन काफी है और स्वयं भी एक सुंदर लेखक है । परन्तु जहां तक पेट का सम्बन्ध है वह एक सरकारी दफ्तर में कागज पीट कर अपना तथा अपने परिवार का गुजारा करता है ।

यह उसके जीवन का संक्षिप्त स्केच है परन्तु यह संक्षिप्तता ही तो जीवन नहीं है । इन सूत्रों की बड़ी लम्बी व्याख्या है । मध्यवर्गीय होने के कारण उसे समाज में कोई ऊँचा पद नहीं मिला है । भेड़ों के गल्ले की एक भेड़ की तरह वह समाज का एक साधारण सा व्यक्ति है। साहित्यिक होने के नाते उसका मानसिक-विकास अपनी श्रेणी से बहुत आगे बढ़ गया है । अस्वस्थता के कारण उसमें भावुकता और हीन भाव का प्रभाव भी बढ़ता जा रहा है । साथ ही मानसिक विद्रोह काफी तेज है । उसका मुख्य कारण सरकारी दफ्तर की नौकरी है, जहां उसकी कीमत साबुन से नहलाये जाने वाले कुत्ते से भी कम है । इसी कारण इस सांस्कृतिक-विकास, विद्रोह, भावुकता और जबरदस्ती से पैदा हुए हीनभाव ने निशिकान्त के जीवन में एक आग लगा रखी है । उस आग में वह स्वयं ही झुलसता रहता है । बचने का कोई रास्ता उसे सूझता नहीं । सूझे भी कैसे ? न तो उसमें प्रारम्भिक जातियों का विकास है, न धार्मिक मदान्धों की श्रद्धा । बुद्धिजीवी प्राणी की तरह तर्क पर तर्क उसे जहां का तहां समेटे है । उदाहरण के लिए उसके जीवन की असंख्य घटनाओं में से एक दो घटनाएं दी जा सकती हैं । सच तो यह है उसका वर्तमान जीवन इन्हीं परस्पर विरोधी घटनाओं का जमघट मात्र है । अभी उस दिन वह दफ्तर से लौट रहा था । मन दुखी था क्योंकि काफी लताड़ें पड़ी थीं सोच रहा था ऐसी नौकरी से डकैती भली । मैं जरूर स्तीफा देकर

विष्णु

डाकू बनूँगा । इस समय अगर कोई उसे गौर से देखता तो उसका सुंदर चेहरा विकृत हो उठा था । आँखें घृणा से भरी थीं । शरीर कांप-कांप उठता था और वह बार-बार तीव्रता से बोलने लगता था । सहसा कहीं दूर वातावरण में नारों की सदा गूँज उठी । वह चौंका, ठिठका और देखा, सामने से सिपाहियों के बीच में राजबन्दियों का समूह आ रहा है । वे ही बंदी बार-बार पुकार रहे हैं—

'महात्मा गांधी जिंदाबाद !' , 'मौलाना आजाद जिंदाबाद !' इत्यादि-इत्यादि ! उनमें जोश था और थी मर मिटने की उमंग । उसके हाथ लौह-शृंखलाओं में बंधे थे परन्तु हृदय उमड़ पड़ता था देश माता के चरणों में । उनकी चाल पर अंकुश था परन्तु मन की गति बह रही थी देश भक्ति की पवित्र धारा में । उसने उन्हें जाते देखा, उनके नारों को सुना, उनके अद्भुत प्रकाश से चमकते हुए मुखों पर दृष्टि डाली । जैसे वह लज्जा से जकड़ा गया । कितना कमीना हूँ मैं ? कितना क्षुद्र, कितना निन्दनीय ? उन्हीं के पैर चाटता हूँ जो मुझे ठुकराते हैं । उन्हीं की बातों के गीत गाता हूँ जो मुझे और मेरे कारण मेरी मां को गाली देते हैं......।

"नहीं-नहीं । मैं अब यह नहीं सह सकता ।"

"मैं आज ही स्तीफा दे दूंगा ············।" और दूसरे ही क्षण जो दीन-भाव उसमें भर चला था वह विद्रोह में पलट गया । उसकी गति तीव्र हो गयी । छाती में दृढ़ता भर आयी और कल सरकारी-दफ्तर में बैठने की कल्पना भी कष्टकर मालूम होने लगी । लेकिन उसी संध्या को जब उसने कलम उठा कर कागज पर लिखना चाहा — मुझे दुःख है कि मैं अब आपकी नौकरी करने में असमर्थ हूँ तो न जाने कहाँ से आकर एक तिनका कलम की नोक में घुस गया । कागज पर एक लम्बी भोंड़ी लाइन सी खिंच कर रह गयी । अब क्या था, अंकुश के पड़ते ही तर्क अबोध गति से बहने लगा । क्या वाहियात बात है—वह खीझ उठा ।

"वाहियात बात यही है कि तुम स्तीफा दे रहे हो "

"वह वाहियात बात है ! यह तो गौरव की बात है । मैं देश की बेइज्जती नहीं सह सकता ।"

कोई जोर से हंस पड़ा—"देश की इज्जत ! क्या करोगे तुम इस इज्जत की रक्षा के लिए ।"

"मैं क्या करूंगा ? मैं देश का भ्रमण करूंगा । स्थान-स्थान पर व्याख्यान दूंगा और देश के वास्तविक जीवन की कथाएं लिखूँगा ।"

"और पेट की कथा............।"

"पेट की कथा ? क्या तुम समझते हो मुझे पेट भरने योग्य पैसे नहीं मिलेंगे ?"

"मैं नहीं कहता । तुम ही कहा करते हो साहित्य पेट भरने का धंधा नहीं है ।

मन में जैसे ठेस लगी लेकिन उसने कहा—"देश की सेवा के लिए जीवन धारण करना जरूरी है ।"

"और देश अंधा नहीं है............।"

"देश अंधा नहीं है लेकिन तुम्हारा शरीर जरूर अंधा है जो बार-बार ठोकर खाकर गिर पड़ता है । तुम इसे ही नहीं संभाल सकते फिर किस बिरते पर देश को संभालने का हौसला करते हो ।"

तर्क फिर कुण्ठित होने लगा.........।

"और तुम्हारी पत्नी है, कल को बच्चा भी होगा । छोटे भाई हैं जिन्हें तुम पढ़ा लिखा कर योग्य बनाना चाहते हो............।"

मन दुविधा से भर उठा, कलम हाथ से गिर पड़ी और सिर मेज पर दे मारा–तो मैं क्या करूं ?

लेकिन उसे कुछ भी नहीं करना पड़ा । केवल अगले दिन सबेरे रोज की तरह कोट कन्धे पर लटकाया और दफ्तर चला गया ।

इस प्रकार निशिकान्त बाबू के जीवन में स्तीफा देने की घटनाएं तो अनेक हैं परन्तु स्तीफा देने की घड़ी कोई नहीं है । साहित्य-जीवन में भी यही ममता उसे जकड़े हुए है । एक सम्पादक ने उसे लिखा — आप हमारे साहित्य के अग्रदूत हैं । कृपा कर शीघ्र ही विशेषांक के लिए कोई सुंदर रचना भेजिए ।

विष्णु

साहित्य के अग्रदूत निशिकान्त ने उसी दिन एक कहानी लिखनी शुरू की और समाप्त होने पर भेज दी । लेकिन विशेषांक तो क्या अनेक साधारण अंक भी उस कहानी को छापने का गौरव नहीं पा सके। वह झुंझला उठा—कैसे कमीने हैं ये लोग ? मैं अब कभी भी इन्हें अपनी रचना नहीं भेजूंगा ।

यह बात उसने सोची ही नहीं, उन्हें लिख भी दी लेकिन उसके सात-आठ माह बाद उन्हीं संम्पादक का पत्र मिला—क्या आप कृपा कर कोई कहानी न भेजेंगे । महती कृपा होगी । तो सच जानिये निशिकान्त बाबू के मन में लेश मात्र भी विद्रोह नहीं था । उन्होंने कलम उठायी और लिख दिया—शीघ्र ही आपकी आज्ञा पालन करने की कोशिश करूंगा।

निशिकान्त बाबू के जीवन की धारा इसी गिरती-उठती गति से बहती जा रही थी । उसमें उबाल था और थी उबाल के बाद आनेवाली शिथिलता । इसी कारण विद्रोह कभी फूटता नहीं था । अन्दर ही अन्दर उसकी आत्मा को कचोटता रहता था लेकिन आजकल इन्हीं निशिकान्त बाबू के जीवन में एक अद्‌भुत परिवर्तन होता जान पड़ रहा था। उस परिवर्तन की स्पष्ट व्याख्या करना तो बड़ा कठिन है परन्तु यह निश्चित था कि उनके भीतर कुछ करने की तीव्र इच्छा बलवती हो रही थी । इन दिनों देश-देश में अशांति थी और वातावरण में विद्रोह । जगह-जगह महानाश और महाप्रलय के दृश्य स्पष्ट थे । जगह-जगह पाशविकता और पैशाचिकता पार्थिव रूप में प्रगट हो चुकी थी। मानव की क्षुधा इतनी उग्र हो उठी थी कि वह अपने को ही खाये जा रहा था। इसी महाप्रलय के बादल निशिकान्त के देश पर भी छाते जा रहे थे और उसका मन उन्हें देख-देख कर उमड़-घुमड़ उठता था ।

वह सोचा करता था---क्या हम कभी आजाद नहीं हो सकते ? क्या हम सब देशवासी मिलकर दुश्मन के दाँत खट्टे नहीं कर सकते ? वह सोचता ही नहीं था बल्कि मित्रों को लेकर जोरदार बहस करना भी उसका काम हो गया था । ऊपर के कमरे में जाकर किवाड़ बंद कर के वह अपने अंतर की आकुलता को इस प्रकार प्रगट करता कि उसके साथी अवाक् रह जाते। लेकिन उसके साथी भी कम भावुक नहीं थे। उस समय

तो बात ही ऐसी थी कि देश के प्रत्येक प्राणी के भीतर अनेक प्रश्न आप ही आप पैदा होने लगे थे । उन मित्रों में कई पक्के कांग्रेसवादी थे । उनका विचार था कि अंग्रेजों से बढ़ कर हमारा कोई दुश्मन नहीं है । इन्होंने हमारा सांस्कृतिक, सामाजिक सब प्रकार से नाश किया है । इनको निकाले बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता । वे कहते – निशिकान्त बाबू तुम, तुम तो इस प्रश्न की कल्पना भी नहीं कर सकते । तुम उनके टुकड़े खाते हो, तुम गुलाम हो ।

निशिकान्त तिलमिला उठता लेकिन दूसरे साथी कहते–बेशक अंग्रेज हमारे दुश्मन हैं । बेशक इन्होंने पूंजीवाद को जन्म देकर संसार का नाश किया है, परन्तु आज जो दुश्मन हमारे दरवाजे पर खड़ा है वह इन से कहीं बढ़कर जालिम है । वह हमारी सभ्यता हमारी संस्कृति यहाँ तक कि हमारे अस्तित्व का दुश्मन है । उसके हाथों में हमारी माँ-बहिनों की इज्जत सुरक्षित नहीं है............।

कांग्रेसी बोल उठता—इन्होंने ही कौनसी कसर छोड़ी है ?

लेकिन—कम्युनिस्ट तर्क करता –– लेकिन आज उनका और हमारा स्वार्थ एक है । आज वे जनता का पक्ष लेकर फासिस्ट शक्तियों को कुण्ठित करने चले हैं । आज हमारा कर्तव्य है हम उनके साथ मिल कर उस सार्वजनिक दुश्मन का नाश करें ।

राजभक्त भी थे । वे बोल उठते––तुम इन्हें दोष देना जानते हो । तुम अपनी गुलामी के लिए आप ही जिम्मेदार हो । सदा कुत्तों की तरह लड़ते हो । तुम्हें मिलकर बैठना किसने सिखाया ? तुम्हें देश-भक्ति का पाठ किसने पढ़ाया । किसने बढ़-बढ़ कर बोलना बताया । इन्हीं अंग्रेजों ने तो जिन्हें तुम पानी-पीकर कोसते हो । काश कि जर्मनी का फ्यूरर तुम्हारा राजा होता तो तुम देखते गांधी और आजाद, नेहरू और प्रसाद किस तरह सूली पर लटकाये जाते हैं............

और फिर यह बहस इतनी तीव्र हो उठती कि शब्दों के स्थान पर नयनों की फुंकार ही सुनायी पड़ती । नीचे चौक में बरतन धोती-धोती निशिकान्त की पत्नी रजनी सोचती––क्या हो गया है इन लोगों को ? क्या लड़ते हैं इस जमाने में ? यही

सोचती-सोचती उठती, लालटेन जलाती और चुपचाप जरा किवाड़ धकेल कर अंदर रख जाती। सहसा बहस की तीव्रता लालटेन के प्रकाश में अंधकार की तरह भंग हो जाती। निशिकान्त कहता—अरे ! संध्या आगयी।

साथी कहते—"इतनी देर !!"

और फिर वे उठते जाने के लिए। तब निशिकान्त कहता—"लेकिन मित्रों ! मैं एक बात कहता हूँ ये फासिस्ट शक्तियाँ बर्बर हैं। इनका मुकाबला करना हमारा फर्ज है, यह आप सब मानते हैं।"

साथी कहते बारी-बारी—"बेशक ! इससे कौन इंकार करता है ?"

"तो फिर"—निशिकान्त कहता—"तो फिर क्यों नहीं हम मान लेते कि हम आज़ाद हैं। भारत हमारा देश है और हमें फासिस्ट दुश्मन से लड़ना है। अगर हम फासिस्टों को हरा सके तो क्या अंग्रेज हमें गुलाम रख सकेंगे ?"

लेकिन यह अंग्रेजोंवाली बात किसी को टिकने नहीं देती। कांग्रेसी कहते—इन्हें निकाले बिना हम नहीं लड़ सकते। राज-भक्त कहते—हम इनके बिना नहीं लड़ सकते। और इसी तरह होते-होते देश में एक दूसरा तूफान पैदा हो गया। कांग्रेस वालों ने सरकार को अल्टीमेटम दे दिया। वे पकड़े गये। विद्रोह फूट पड़ा और दबाया भी गया लेकिन आग नीचे-नीचे सुलगती रही। उधर युद्ध प्रयत्न भी चलते रहे। बात चीत भी चलती रही।

कैसा अद्‌भुत देश है भारत !—निशिकान्त ने सोचा। उस क्षण जैसे उसे लगा यह भारत उसका देश नहीं है। न जाने कहाँ से लाकर वह उसमें पटक दिया गया है। इस कल्पना ने निशिकान्त को क्षणिक सुख तो पहुँचाया परन्तु वह सोच नहीं सका कि कौन सा देश उस गुलाम भारतवासी को अपना निवासी मान सकेगा।

दूसरे ही क्षण वह काँप उठता—"छी ! कैसा मूर्ख हूँ मैं ? जन्म-भूमि के प्रति यह घृणा मुझमें क्यों उपजी ? मैं भारतीय हूं, मुझे भारत पर गर्व है। वह आज गुलाम है तो क्या कभी आज़ाद नहीं होगा। यह असंतोष, यह अशांति, यह मानोमालिन्य। सभी उस प्रभात की सूचना देने वाले हैं जो प्रकाश और जीवन का जन्मदाता है।"

(२)

लेकिन इस सब काल्पनिक संघर्ष के अतिरिक्त उसके मन में कई ऐसी बातें थीं जो उसे बेचैन बनाये हुई थीं जिसके कारण उसकी पत्नी रजनी को यह संदेह हो चला था उसका पति उससे अधिक सुंदरी की खोज में तो नहीं भटक रहा है।

भारत की मध्यवर्गीय नारी इससे अधिक जानती ही क्या है उसका विवाह होगा और विवाह के बाद होंगे बच्चे, एक के बाद एक, गुलामी की गिनती बढ़ाने के लिए। यह दूसरी बात है गुलामी में से ही गुलामी मिटानेवाले पैदा हो जाते हैं।

निशिकान्त इसी सत्य को पहचान रहा था भारत पर फासिस्ट शक्ति ने आक्रमण किया तो इस भारतीय नारी का क्या होगा ? यों तो गदर की बात उसने अपनी परदादी से सुनी थी। स्वयं उसकी दादी भागते-भागते एक खेत में पैदा हुई थी और नाल कटा था तीन कोस पर एक गाँव में। मुसीबत के वक्त सबको रास्ता सूझ जाता है, परन्तु जीवन के लिए भागना और अपने को भाग्य के भरोसे छोड़ देना ही तो अंतिम ध्येय नहीं है। इसी के 'कारण' को ही मिटाने के लिए चेष्टा क्यों नहीं की जानी चाहिए ? इस प्रश्न के अनेक उत्तर थे। निशिकान्त उन्हीं को लेकर उलझ जाता। पच्छिम की वीर नारियों, विशेष कर रूस की वीरागंनाओं की कहानी वह रोज पढ़ता था। पढ़ कर उसके भावुक दिल पर एक चित्र सा खिंच जाता था साथ ही साथ धड़कन भी पैदा हो जाती थी......।

लेकिन जब जरा संयत होता तो वह सोचता -- मैं इस नारी की बात तो सोचता हूं परन्तु भारत का अधिकांश पुरुष वर्ग भी तो उन्हीं के समान जीवन की ममता में फंसा है। यदि तुलना की जावे तो सम्भवतः उससे कहीं बढ़ कर भाग्य की बेड़ियां उसे प्यारी हैं........।

यह ख्याल आते ही उसका दिल घृणा से भर उठता और उसे याद आ जाते वे लोग जो अपच का कारण मिटाने के लिए डॉक्टर की दूकान पर धक्के खाते फिरते हैं परन्तु आवश्यकता से अधिक रोटी उस मनुष्य को देने से इंकार करते हैं जो भूख का दर्द मिटाने के लिए उन्हीं की तरह डॉक्टर का मोहताज है। वह जानता है कि १९४२ की

दुनिया में रोटी कितनी महंगी है तो भी मध्यवर्गीय लोग भाग्य से चिपटे हुए हैं। उनमें तनिक भी असंतोष नहीं है। इसीलिए जीवन नहीं है। दूसरी तरफ वे लोग हैं जो जीवन के साधनों को दुनियां की नजर से दूर रखने की चेष्टा में लगे है। जब रोटी सोने के मोल बिके तो वे सोना बटोर कर अमीर बन सकें.........।

निशिकान्त के दिमाग में यही प्रश्न पेचीदगी पैदा किये रखते हैं। यूं तो वह भी दुनियां की तरह दुनियां के सब काम करता है, परन्तु उसमें पहले जैसी प्रफुल्लता और स्फूर्ति नहीं रह गयी है। इसलिए रजनी ने एक दिन पूछा—"जी अच्छा नहीं रहता आपका ?"

"ठीक है"—उसने आलस्य से कहा।

"ठीक है ?"—रजनी बोली — "तो.........।"

जैसे उसे एक दम अपनी गलती मालूम हुई। मुस्करा उठा बोला – "रजनी इस युद्ध के कारण काम इतना ज्यादा है कि संध्या को उठते-उठते थक जाता हूँ।"

रजनी ने कहा—"तीन साल तो हो गये इस युद्ध को न जाने कब तक और चलेगा ?"

"कौन जाने ?"

क्यों जी ! कौन जीत रहा है अब अंग्रेज या जर्मन ?"

पता नहीं--अलसाया सा निशिकान्त बोल उठा। अदंर ही अंदर खीझा भी ! कैसी हैं ये पढ़ी-लिखी युवतियाँ ? इतना भी नहीं जानती ! उधर वे हैं कि सारे देश का भार कंधों पर लिये घूमती हैं।"

और वह बात एक दो रूखे प्रश्नोत्तर के बाद समाप्त हो गयी। निशिकान्त बोला--"मैं घूमने जा रहा हूँ।"

ऐसा अनेक बार होता था। रजनी देर रात गये तक अकेली बैठी तारे गिना करती थी। उस अनन्त आकाश में केवल वह सप्तर्षि-मंडल को पहचानती थी। उसी के सहारे समय का पता भी लगा लेती थी। कभी मन नहीं लगता तो कोई पुस्तक पढ़ने लगती लेकिन जब तक निशिकान्त लौटता वह पुस्तक धीरे-धीरे रजनी की

आंखों के आगे से हट कर उसकी छाती पर आ लेटती । निशिकान्त आकर जगाता—"रजनी । उठो ऊपर चलो ।"

रजनी रोज उठ कर कहती "क्या मैं सो गयी थी । अभी तो पढ़ रही थी! '

कभी–कभी निशिकान्त कहता—" डर नहीं लगता तुम्हें किवाड़ खुले रहते हैं ?"

रजनी को डर तो लगता था परन्तु कह देती थी—" बंद मोहल्ला है जी । आने के लिए साहस होना चाहिए ।"

लेकिन एक दिन उसी तरह रजनी किताब पढ़ते सो गयी और जब अचानक आंखें खुली तो कमरे में लालटेन जल रही थी । ऊपर देखा तो सप्तर्षि नीचे उतर चुके थे । अचकचा कर उठ बैठी—अरे·········।

तभी उसने देखा — सामने मेज पर कोई बैठा है । वह कांपी, ठिठकी । लेकिन नहीं—

उसने कहा– "अरे ये तो वे हैं । शायद पढ़ रहे हैं ।"

उठ कर कमरे में आयी मुस्करा उठी । आज निशिकान्त पढ़ते-पढ़ते सो गये थे । एक हाथ में पुस्तक थी और दूसरे हाथ पर सिर रखा हुआ था । केवल काले बाल प्रकाश में चमक रहे थे । वह पास आकर बोली—"अजी, आप सो गये, उठिये !"

निशिकान्त नहीं उठे । उठते कैसे ? वे तो बहुत देर से अपने नगर में फासिस्ट-सेना का सफल मुकाबिला कर रहे थे ! वे जब चारों ओर से निराश हो गये उन्होंने अपने जैसे अनेक युवकों को इकट्ठा किया ।

उसे अचरज हुआ जब उसके अकेले प्रयत्न के बावजूद एक अच्छी खासी सेना इकठी हो गयी । उस सेना का नाम 'नागरिक सेना' था और उसकी पहचान केवल एक गुप्त संकेत था । उस सेना में अधिक छोटी-छोटी उमर के लड़के थे जो जंग के बारे में बहुत कुछ नहीं जानते थे लेकिन रोमांस उन्हें प्रिय था और इसी कारण वे जंग की भयानकता में रोचकता अनुभव करते थे ।

सहसा एक दिन उन्होंने सुना फासिस्ट-सेना शीघ्र ही उनके नगर के पास आने

वाली है । भाग्य से उनके नगर के चारों ओर एक बड़ा जंगल था । उसमें बड़े और धने दरख्त तो नहीं थे परन्तु आदमी को छिपा लेने वाले झाड़ों की कमी नहीं थी । उस दिन उनके एक उपनायक ने आकर कहा—"सेना का एक भाग जङ्गल के उत्तरी इलाके में फैल चुका है ।"

"और गाँव में ?"—नायक ने पूछा।

"अभी नहीं। लेकिन वहाँ पर खेतिहारों का एक दस्ता जान पर खेलने को तैयार है।"

"विश्वासघात का डर तो नहीं है ?"

"नहीं और फिर उपनायक अनवर गुप्तरूप से उनमें मौजूद है।"

"जहरीले पदार्थों की कमी नहीं है ?"

"नहीं।"

"और दिल में आग लगा देने वाले कथक वहाँ पहुँच चुके हैं ?"

"जी।"

"तो तुम पच्छिम की ओर बढ़ कर उन गांवों में चले जाओ जहाँ नागरिक-सेना के वे सिपाही पहुँच चुके हैं जिन्हें फासिटों का मुकाबला करना है।"

"आज्ञा सेनानायक।"

हाँ, और लवनसिंह को मेरे पास भेजते जाना।"

संकेत कर के उपनायक वीरसेन चला गया। निशिकान्त ने तीसरे दस्ते की सूची पर सरसरी निगाह डाली। दो-तीन नाम उन्हें याद आये—करमसिंह, उमर और किसन। उसी समय लवनसिंह ने आकर संकेत किया। वह एक गठे हुए बदन का सिख था। उसके कपड़े एक गरीब किसान के थे और उसने लाठी के सहारे एक पुट-लिया कंधे पर लटकाई थी।

"क्या खबर है, लवनसिह ?"

"नायक, लगभग पचास फासिस्ट इधर-उधर बिखर चुके हैं।"

"तुमने देखा ?"

"देखता और नायक के सामने इसी तरह आ जाता !"

"समझा ! कितनी दूर हैं ?"

"लगभग ३० मील ।"

"ओह !"

"मैंने प्रबंध कर लिया है । मेरी सीमा में आते ही वे बंदी बना लिये जावेंगे ।

"तुम्हारे साथ कौन है ?"

"करम और उमर ।"

"तो तुम उन्हें ले गये हो ?"

"हाँ नायक !"

"किसन को भी ले जाओ ।"

"किसन !"--लवनसिंह झिझका........।

"हाँ, मैं उसे जानता हूँ । वह रोमांचक युवक है और सामने पड़ने पर आगे बढ़ना जानता है ।"

"आज्ञा नायक !"

और संकेत देकर वह किसन भी आगे बढ़ गया ! निशिकान्त ने एक गहरी सांस ली और शीघ्रता से एक ओर बढ़ गये ।

उसके तीसरे दिन ही वह आश्चर्यजनक घटना गयी । नायक को खबर हो मिली कि पूरब के गांवों में दस फासिस्ट सैनिक गिरफ्तार हो चुके हैं । वह गाँव फासिस्ट फौज की अंतिम सीमा पर था । उससे परे का इलाका फासिस्ट बम-वर्षा द्वारा नष्ट कर चुके थे । जिस समय वे फासिस्ट आगे बढ़े तो अनेक गरीब किसानों ने उनका मुकाबला किया । फासिस्ट वर्बर थे उन्होंने बड़ी निर्दयता से गांव में आग लगा दी । घरों को लूट लिया और स्त्रियों को बेइज्जत किया ।

नायक ने जोर से पैर पटका । क्रोध उसकी आंखों में चमक आया ।

संदेशवाहक डरा । उसने कहा--"नायक ! वे घरों की स्त्रियां नहीं थीं । वे बाजारू वेश्याएं थीं ।

"जानता हूँ "— नायक ने दृढ़ता से कहा।

"लेकिन नायक ? वे तो गिरफ्तार हो चुके हैं। परन्तु वे इतने मूर्ख नहीं है जितने हम समझते हैं। लवनसिंह के छापामार दस्तों को उन्होंने इस प्रकार छकाया कि उनकी हिम्मत टूटने लगी।"

नायक बोल उठा—"लेकिन……।"

"लेकिन"—सिपाही बोला—"लेकिन किसन ने अद्भुत साहस से काम लिया। जब लवनसिंह फासिस्टों को पीछे खींचता हुआ ला रहा था उसने केवल दस साथियों के साथ उन्हें पीछे से तंग करना शुरू कर दिया। नायक, फासिस्ट बहुत थे। किसन और उसके साथी लौट कर नहीं आये पर तु तीन दिन बीत चुके हैं। फासिस्ट अभी तक हमारी सीमा में प्रवेश नहीं कर सके हैं।"

नायक तब ऊपर देख रहा था। उसके होठों पर मुस्कराहट थी और आँखों में पानी। उसने कहना चाहा—"सैनिक ! मैं अभी चलूंगा…" कि किसी ने जोर से थपथपाया—"उठिए जी।"

वह चौंका—"किसन !"

"अजी आप पढ़ते-पढ़ते सो गये। चलिए ऊपर।"

उसने आंखें मलीं, देखा कि वह अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ है। उसे याद आया वह आज मित्रों से बहस करने के बाद घर लौटा तो छापामार नागरिक-सेना की बात पढ़ते पढ़ते सो गया। उसे हंसी भी आई और ग्लानि भी हुई क्योंकि जो कुछ उसने देखा था उसके कारण उसका मन देश के लिए सशंकित था परन्तु वह केवल स्वप्न ही है यह जानकर उसे ग्लानि नहीं हुई। उसने रजनी से इतना ही कहा —"मैं सचमुच सो गया। कितनी रात बीत गई ?"

"लगभग तीन बजे होंगे।"

"ओह !"—वह लड़खड़ाता हुआ उठा और रजनी की ओर देखे बिना ही ऊपर चढ़ गया।

———

मुक्ति

●

ठीक उस समय जब कि मेरी ट्रेन स्टेशन पर रुकी, तो र से ही रमश ने चिल्लाकर कहा – 'अरे निशिकान्त, आ गए !' कान्त ने हंसकर कहा –– 'नमस्ते । कहो कैसे हो ?'

वह उसी तरह बोला––'ठीक हूँ । तुम कैसे हो ? मैं जानता था, तुम उन अनाथ बच्चों को देखने के लिए अवश्य आओगे ।' और उसने आगे बढ़कर सूटकेस उठा लिया और बोला–– 'होलडोल तुम उठा लो । जगह बहुत दूर नहीं है मुश्किल से एक फर्लांग होगी ।'

वह एक छोटा-सा स्टेशन था । भीड़ अधिक नहीं थी । सूरज निकलने में काफ़ी देर थी और बिजली की धीमी रोशनी में जाड़े की वह रात बड़ी सुहावनी मालूम पड़ रही थी । रमेश ने एक शाल ओढ़ रखा था, इसीलिए आसानी से सूटकेस उठा लिया; परन्तु ओवरकोट के कारण मुझे होलडोल उठाने में कठिनाई पड़ रही थी । और वह था कि चलते-चलते कहता जा रहा था––'बेचारे अनाथ बच्चे ! निशिकान्त, जब वे पिछले महीने इस स्टेशन पर आए, तो उन्हें देखकर मेरी आंखें भर आईं । हड्डियां निकली हुईं, आँखें डूबीं-डूबीं, पतले-पतले हाथ-पैर और धुएं-से काले –– जैसे युगोंसे अन्न की सूरत न देखी हो । वैसे ही काफ़ी खूबसूरत थे, ऊपर से भूख के शिकार और माँ-बाप का बिछोह ।' और फिर हो-हो करके ऐसे हंसा कि रो पड़ेगा ।

कान्त होलडोल के कारण इतना खिन्न-मन था कि उसकी ओर देख न सका । केवल इतना कहकर रह गया––'भूख और स्नेह के अभाव में वे जीते रहे, यही क्या कम अचरज है, रमेश ?'

'हां, हां' रमेश बोला ––'अचरज ही तो है । निशिकान्त, तुमने वह दृश्य नहीं देखा । मैंने देखा है, जब पहले दिन उन्हें खाना खिलाया गया था । भैया,सच

विष्णु

कहता हूँ, खिलाने वाले थक गए; पर उन्होंने मना नहीं किया । भूखे भेड़ियों की तरह खाने पर टूट पड़े ।' फिर आप-ही-आप धीमा पड़कर बोला —' न जाने कितने दिनों में उन्होंने पका हुआ खाना देखा होगा ! खिलाने वाले डर रहे थे कि कहीं पेट न फट जाय ।'

कान्त ने कहा—'बेशक ज्यादा खाने से भी मौत आ जाती है और फिर इतने दिनों के उपवास के बाद !'

कान्त की बात बिना सुने ही रमेश ने कहा—'पहले तो उनकी बात समझ में ही नहीं आती थी; पर अब वे धीरे-धीरे हिंदी बोलने लगे हैं । भजन गाते हैं, मंत्र पढ़ते हैं । लेकिन भैया प्रेम के लिए भाषा की जरूरत नहीं होती । एक लड़की मुझसे इतनी हिलमिल गई है कि जैसे जन्म जन्म का साथ हो । नाम है उसका मीनू । सांवली है, पर आंखें इतनी भोली हैं कि चित्र खींचने को मन करता है । सबसे पहले जब मैंने उसे देखा, तो वह घबराकर चारों ओर देख रही थी । मैंने पास जाकर कहा — क्या बात है, मुनिया ? पर वह समझी नहीं । कैसे समझती ? बंगाली बच्चे भला हिंदी क्या जानें ? मैंने उसका नाम पूछा, तो वह मेरा मुंह देखने लगी । मैं समझा । मैंने कहा—मेरा नाम रमेश, उनका नाम जीवनदास, इनका धीरेन । तो वह हंसी और बोली—आमार नाम मीनू । निशिकान्त, अब तो मैं उसके साथ टूटी-फूटी बंगला बोल लेता हूँ । बंगला-शिक्षक खरीद लाया हूँ और उसी के सहारे मैं उन सबसे बातें करने लायक बंगला सीख गया हूँ ।'

और यहीं आकर उसका एक फर्लांग समाप्त हो गया । कान्त हांफने लगा था, उंगलियां बर्फ की तरह ठन्डी होकर अकड़ गई थीं और नाक से पानी टपक रहा था । सामने एक नया-सा एक मंजिला मकान था । मुख्य द्वार अनाथालय का एक साइनबोर्ड लगा था । मकान का अहाता इतना विशाल था कि दर्शकपर प्रभाव डालता था । रमेश ने यहीं रुककर कहा—बस, यही है ।' और फिर पुकारा—'रामू, ओ रामू !'

रामू अनाथालय का नौकर था । कांपता हुआ आया और रमेश ने एकदम बोलना शुरु कर दिया—'यह सामन ले जाओ । मेरे कमरे में रखो । चायका प्रबंध

करो । पहले हाथ-मुंह धोने को गरम पानी लाओ ।'

रामूने बिस्तर सिर पर उठाया, सूट केस पकड़ा और चलने को हुआ फिर मेश फिर बोला—'बच्चे जागे ?'

'जी, अभी नहीं ।'

'क्यों ? छः तो बज चुके । जाओ, जगाओ उन्हें । बेवकूफ रोज का काम भूल जाता है । शौच जाएंगे, कुल्ला-दांतुन करेंगे, सात बजे सन्ध्या करने का समय होता है, जाओ ।'

फिर वे लोग अन्दर कमरे में गए । कान्त तो काठ की कुरसी पर धम्म-से बैठ गया । कोट उतारने को मन नहीं किया । बैठा-बैठा खिड़की से झाँकने लगा । दूर पूरब में किरणें फूटने लगी थीं; पर कुहासे के कारण धुंधलापन कम नहीं हुआ था । तो भी सर्दी धीरे-धीरे बढ़ रही थी । रमेश काठ की चौकी पर योगासन मारे सन्ध्या के मन्त्र गुनगुना रहा था । थोड़ी देर बाद वह सहसा उठ खड़ा हुआ और पूछा— 'तुम्हारी चाय आई ?'

'नहीं, अभी तक तो नहीं आई ।'

'क्या मुसीबत है ? ये लोग समय का मूल्य नहीं जानते । अरे ओ रामू ... रामू...!' और फिर मुड़कर बोला—'उसका कसूर नहीं है । हम लोग चाय पीते ही नहीं ।'

इसी समय दो गिलास कपड़े से पकड़े रामू आया और उन्हें मेज़पर रखकर बोला—जी, चाय तो बन गई थी; पर बच्चों को जगाने में देर हो गई । मीनू कह रही है कि मैं भी चाय पियूँगी !'

अधिकारपूर्वक रमेश ने कहा—'नहीं, वह चाय नहीं पी सकती ।'

कान्त गिलास उठाकर चाय पीने लगा था । बदन में कुछ गरमी आई, तो कहा—'मीनू को जरा यहाँ तो बुलाओ ?'

उसी तरह गम्भीर रमेश ने कहा— 'नहीं' उसकी आदत बिगड़ जायगी आखिर वह अनाथ है ।' और फिर सहसा जैसे जगकर बोला —'अरे तुम चाय वैसे ही पी

गए ? खाली चाय, वाह ! जरा ठहरो तो, अभी कुछ नाश्ता……।'

कान्त ने कहा–'नहीं रमेश,अभी कुछ नहीं । मैं चाय के साथ कुछ नहीं खाता । । केवल गरमी के लिए……।'

'जानता हूँ',––वह हँसा––'बड़े शहर में रहकर भी तुम बिगड़े नहीं हो ।'

इसी समय अनाथालय की घण्टी बज उठी । वह चौंका–– 'तो चलो, सन्ध्या की घण्टी बज रही है ।'

कान्त उसी तरह उसके पीछे-पीछे चल पड़ा और जहाँ वे जाकर रुके, वह एक हाल था । उसमें सात सौ से अधिक आदमी बैठ सकते थे । उसकी दीवारों पर अनेक चित्र थे — कुछ आर्य समाजी नेता, कुछ दानवीर पूंजीपति, कुछ अनाथों के ग्रुप और कुछ आदर्श-वाक्य, भजन आदि । नीचे फर्श पर एक पुरानी दरी बिछी थी और उस पर लगभग सौ बालक-बालिकाएँ कतार बनाकर बैठे थे । वे योगासन की मुद्रा में थे । उनसे आशा की जाती थी कि वे शून्य में ध्यान केन्द्रित कर मन्त्रों का उच्चारण करेंगे ; परन्तु वास्तव में वे कांप रहे थे । उनके हाथ घुटनों पर से सरककर गोदियों में आ गए थे । लगभग सभी की आँखें खुली थीं और वे दृष्टि चुराकर इधर-उधर ताक रहे थे । उनकी आकृतियाँ भी अजीब थीं । उस धुन्ध में कुछ तो बड़े दयनीय और त्रस्त मालूम पड़ रहे थे, लेकिन स्वर सबका ऊँचा था । उनमें बागड़ी, पंजाबी, हिन्दी, बंगाली सभी थे । सभी का स्वर भिन्न था । जब तक वे सन्ध्या करते रहे, कान्त उनको देखता रहा । उसकी कल्पना कहों से कहीं पहुंच गई । उसने उन सब अनाथ बच्चों के मां-बापों को देखा । देखा उन सब को अपनी-अपनी माताओं की गोदियों में दूध चूसते, हँसते-रोते और माँ-बाप को हँसाते । उन्होंने इन पर न जाने कितनी आशाएं लगाई होंगी । उनमें कुछ वे बच्चे भी थे, जिन्हें उनकी विलासिनी माताएं अपने रास्ते का रोड़ा समझती थीं । इसीलिए वे यहाँ थे ।

सन्ध्या समाप्त हो गई । पण्डितजी के प्रार्थना करने के पश्चात् सबने कहा— 'हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये' ; और फिर शान्ति-पाठ करके सब उठे । लाइन बनाई और बाहर जाने लगे । कान्त नया था, सबने उसे देखा और उसने सबको

उनकी दृष्टि खाली थी, मानो उन्होंने अपने को भाग्य के भरोसे छोड़ दिया हो । उनके बदन पर लगभग एक-से कपड़े थे – पीली कमीज, पाजामा और सस्ते स्वेटर, जो शायद किसी पूंजीपति ने अपने पापों का भार उतारने के लिए दान कर दिए थे । लड़कियाँ सादी धोती पहने थीं । वे लगभग सभी बंगाल से आई थीं । धीरे-धीरे वे कान्त के पास से गुजरीं । सहसा उसने एक लड़की को देखा । उसकी आंखों में एक अद्भुत आकर्षण एक अद्भुत भोलापन था । अवश्य वह मीनू थी, जिसके बारे में रमेश ने कहा था । उसने उसे पुकारा – 'मीनू !' वह हठात् सहमी । अचरज से उसे देखा, जैसे पहचानना चाहती हो । कान्त ने फिर पूछा— 'तुम्हारा नाम मीनू है न ?'

उसने बिना बोले गरदन हिला दी और कान्त की ओर देखती रही । उसने मुस्कराकर कहा – 'मेरे पास आओ ।'

उसने रमेश की ओर देखा । रमेश बोला — 'हां, हाँ, तुम इनके साथ जा सकती हो ?

कान्त मीनू को साथ लेकर कमरे में चला आया । इतनी ही देर में मीनू में अद्भुत परिवर्तन हो आया । वह उससे तनिक भी नहीं झिझकी । पूछा –'चाय आपने पी थी ?'

'हां', – कान्त ने कहा – 'तुम्हें मिली ?'

'नहीं, हमें दूध मिलता है ।'

'ओ ! तब तुम खुशकिस्मत हो । दूध चाय से अच्छा होता है ।'

उसने अचरज से कान्त की ओर देखा । फिर बोली –– 'नहीं, चाय अच्छी होती है । हमें दूध अच्छा नहीं लगता । हमारे देश में बड़ी चाय होती है ।'

'तुम्हारा देश कहां है ?'

'चटग्राम । वहां हमारा बाबा बहुत चाय लाता था ।'

'तुम्हारा बाबा वहाँ क्या करता था ?'

'पता नहीं ।'

'माँ...?'

'माँ ? – उसने कान्त को देखा – 'माँ तो अपने घर चली गई ।'

'और तुम ?'

'हम भी जायेंगे। ये भेजते ही नहीं । कहते हैं, वहां खाना नहीं है, कपड़ा नहीं है। क्या सच वहाँ खाना-कपड़ा नहीं है ? तो मां क्या खाती-पहनती होगी ?'

कान्तने उसे अपने समीप खींच लिया और पूछा–'तुम यहां कैसे आई मीनू ?'

सहज भाव से वह बोली – 'मां ने भेजा था। कह रही थी, तुम्हें बहुत अच्छे कपड़े मिलेगें, खाना मिलेगा। दीदी को भी उसने इसी तरह भेज दिया था । मां को लोग एक गाड़ी में बैठाकर ले गए थे । वह रो रही थी ।'

कान्त का हृदय उसके भोलेपन पर फटा पड़ता था; पर जैसे जीवन उसके लिए अभी कोई मानी नहीं रखता हो। कान्त ने पूछा – 'वहां खाना मिलता था ?'

'पहले तो मिलता था, पर पीछे कम मिलने लगा। मां कहती थी, चावल दुश्मन लूट ले गये। उस पारके देश में दुश्मन आए थे। 'वे हमारे बाबा को भी पकड़ ले गए।' और फिर क्षण-भर रुककर पूछा–'वे बाबाको क्यों ले गए? अब बाबा कब आएँगे ? आएंगे न ?... पर वे तो खूब भात खाते होंगे आप हमें भी वहां ले चलिए न ।'

'हमारे साथ चलोगी ?'

'हाँ, हाँ।' प्रसन्नता से उसकी आंखें चमक उठीं – 'चटग्राम चलेंगे न ? आज ही चलो। वहां मां होगी, बाबा होंगे, दीदी, हासी और सोना सब होंगे ।'

उसकी भोली आंखें बेहद खुशी से भर रही थीं, पर उन्हें देखकर कान्त को रोना आने लगा। उसने बात टाल कर पूछा– 'तुम पढ़ती हो ?'

भोलेपन से उसने कहा – 'पढ़ती तो हूँ, पर जी नहीं लगता।'

'खेलने को जी करता है ?'

'हाँ, खेलने को तो करता है। घर हम लोग हासी, सोना, बकू कागज़ की नाव बनाकर नदी में तैराते थे। हमारे देश में बहुत बड़ी (दोनों हाथ खूब फैलाकर) नदी है। उसे सागर कहते हैं। उसमें बहुत बड़ी-बड़ी नावें चलती हैं।'

उनकी ये बातें चल रही थीं कि रमेश आ गया। हँसकर बोला– 'मीनू , ये

तुम्हारे देश के ही आदमी हैं । इनके साथ जाओगी न ?'

'हां, हां, जरूर जायँगे', – वह मुस्कराकर बोली– 'इन्हीं के साथ जायंगे ।'

'हमें छोड़कर ?' – रमेश सहसा चौंका-सा ।

मीनू क्षण-भर रुकी, फिर बोली– 'आप भी चलना, अच्छा । हम सब चलेंगे । वहाँ बहुत चाय होती है , बहुत भात और माछ होती है ।'

कान्त ने रमेश से अंग्रेज़ी में कहा– 'मीनू बहुत भोली है । बेचारी अकाल की दुर्दशा को बिलकुल भी अनुभव नहीं करती । इसे विश्वास है, इसके माँ-बाप ज़िंदा हैं ।'

रमेश धीरे से बोला – 'कौन जाने इसका विश्वास ठीक हो । रिपोर्ट के अनुसार इसकी मां इसे एक रुपये में बेच गई थी । इसका बाप बर्मा में व्यापार करता था, वहीं रह गया । एक बहन थी, वह कहां गई, पता नहीं । सुनते हैं, इनके ज़िले में फ़ौज का बहुत बड़ा अड्डा है । युवतियां सब वहीं चली गई हैं । मरने वालों को उनकी जरूरत जो है !'

कहते-कहते उसका मुख घृणा से भर उठा । कान्त कुछ नहीं बोला । एक क्षण रुककर उसने फिर कहा – उनका अपराध भी क्या है ? भूखा क्या पाप नहीं करता ? इसीलिए मैंने सोचा है, इस मीनू को मैं ही पाल लूँगा । तुम तो जानते ही हो, तुम्हारी भाभी के मरने के बाद मैंने विवाह नहीं किया; करूँगा भी नहीं । इसीलिए मीनू... बस जी करता है, इसे देखता रहूँ ।' और फिर चुपचाप अनबूझ उन दोनों को देखती मीनू से बोला – 'चाय पियोगी, मीनू ?'

मीनू एकदम प्रफुल्लित हुई – 'हां, पिएंगे ।'

कान्त अब तक कल्पना के परों पर उड़ रहा था । उसकी यह बात सुनकर चौंका-सा । जेब में से पचीस रुपये निकाल कर रमेश को देते हुए बोला – 'रमेश आज सब बच्चे पेट-भर फल और मिठाई खायँगे और साथ में चाय भी ।' और बिना उसके उत्तर की अपेक्षा किए वह बाहर चला गया ।

(२)

अचरज कि कान्त अनाथालय में अधिक दिन नहीं ठहर सका । रमेश के बहुत

कहने पर भी वह उसी रात को लौट आया। उसका मन उद्विग्न हो रहा था और वह अपने कार्य में डूब कर उस दृश्य को भूल जाना चाहता था। चलते समय उसने मीनू से बातें नहीं कीं। उसे याद है, जब वह चला था. तो वह प्रसन्नता से अपनी साथिन को बँगला में समझा रही थी – 'अब मैं अपने घर जाऊँगी। वे बाबू हमारे देश के हैं।' यह सुनकर उसका गला भर आया और वह शीघ्रता से दृष्टि चुराकर बाहर निकल आया। लेकिन दिल्ली आकर भी उसका मन किसी काम में डूब नहीं सका। वह हर समय उखड़ा-उखड़ा रहने लगा। लिखने को कापी उठाकर वह घण्टों शून्य में ताकता रहता।

एक दिन जब वह इसी प्रकार शून्य में ताक रहा था, तो किसी ने करुणार्द्र स्वर में पुकारा – 'क्या मैं आ सकती हूँ?'

वह चौंका। उसके सामने एक युवती खड़ी थी। उसने एक छपी हुई पतली धोती पहन रखी थी, पैरों में साधारण चप्पलें थीं, सिर नंगा था और लम्बे बाल दो वेणियों में बँधे थे। वह उत्तर की चिन्ता किए बिना ही भीतर चली आई और एक चिट्ठी दिखाकर बोली – इसे जरा पढ़िए।'

कान्त ने पढ़ा। अंग्रेजी में लिखा था – 'यह लड़की बंङ्गाल के महानाश का शिकार है। इसके माँ-बाप मर गए। भाई बम से मारा गया। भूख से तड़प-तड़पकर यह यहाँ तक पहुँची है। सम्भ्रान्त कुल की है, भीख मांगना नहीं जानती। पढ़ने-वालों से प्रार्थना है कि इसकी मदद करें।'

पढ़कर उस युवती को देखा। बड़ा अजीब-सा लगा। कहा – 'तो आप...।'

वह गिड़गिड़ाई – 'हम भूखे हैं। हमारा सब-कुछ नष्ट हो गया। दुखी-सन्तप्त हम आपकी शरण में आए हैं। हमारी सहायता करें। हमारा बालक मर रहा है।'

कान्त ने कहा– 'देखो, यहां पर बंगालियों की कई सभाएं हैं। मैं कुछ के पते बता देता हूँ। वहाँ चली जाओ। वे लोग तुम्हारा प्रबंध कर देंगे।'

वह बोली— 'हम जानते हैं। वहाँ भी हम गए थे, पर वे हमारी सहायता नहीं कर सकते।'

'क्यों ?'

'हम बहुत हैं।'

'कहाँ रहती हो ?'

उसने एक जगह का नाम बता दिया और फिर गिड़गिड़ाकर कहा — 'कुछ दीजिए, बाबू !'

कान्त को कुछ अच्छा नहीं लगा। उसने देखा, उसकी आंखों में जो रङ्ग था, वह अक्सर उन औरतों में होता है, जो पेशा कमाती हैं। अतः उसने कहा — 'मैं कुछ नहीं कर सकता।'

'लेकिन बाबू...!'

'नहीं, इस वक्त मुझे माफ करो।'

'बाबू ! आप हिन्दू हैं, आपको जरूर हमारी मदद करनी चाहिए।'

लेकिन वह उसकी बात नहीं मान सका और अन्त में वह निराश होकर चली गई। जाते जाते उसने कहा — 'तुम हिन्दू नहीं हो। अगर सच्चे हिन्दू होते तो जरूर मदद करते।'

वह क्या कहना चाहती थी, कान्त नहीं समझा; पर उसने इतना निश्चय किया कि इनका पता लगाना चाहिए।

और वह उसी सन्ध्या को उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ का पता उसने बताया था। उसकी बात सच थी। वहाँ कई बंगालिनें थीं। उसने देखा, उनके कपड़े फटे नहीं थे, उनके बाल भी सुलझे-सँवारे थे और दो-तीन को छोड़कर वे सब युवतियाँ थी। उस समय वे एक स्त्री को घेरे बैठी थीं। वह स्त्री बहुत बुरी हालत में थी। उसकी साड़ी तार-तार हो रही थी, उसके बाल बिखरे थे, आखें गड़ गई थीं और शरीर एकदम शिथिल था। उसने साहस करके एक स्त्री से पूछा – 'इसे क्या हुआ है ?'

चौंककर उन सबने कान्त को देखा, घूरा और फिर एकने कहा– 'बाबू, अकाल की मारी है। सब कुछ लुट गया बेचारी का। अब यह भी मुक्त होने वाली है।'

इसी समय वह स्त्री बोल उठी — 'नहीं, नहीं, मैं लौट जाऊँगी। मुझ से

यह पाप नहीं होगा। मेरी लड़की, मेरी बच्ची... !' और मैंने देखा, उस मण्डली में खलबलो-सी मची, जैसे उन्हें यह बुरा लगा हो । एक प्रौढ़ा ने डपटने के स्वर में कहा — 'शोर न मचा। पेट में अन्न पड़ा है, तो पाप-पुण्य की बात सूझी है।' और फिर कान्त से कहा — बाबू, ज्वर तेज है। कोई दवा दिलवा सकोगे ?'

कान्तने पूछा — 'तुम क्या करती हो ? कहां से खाती हो ?'

वह गिड़गिड़ा कर बोली— 'आप-जैसे बाबुओं से मांगकर जो मिल जाता है, वही खाती हूँ।'

रोगिणी उठ बैठी। वह तमतमा रहीं थी। और उसकी आंखें निकली पड़ती थीं तेजीसे बोली— 'कहाँ से खाती है ? मांगे से कौन देता है ? सब युवतियां हैं, और यौवन का मोल खाती हैं, बाबूजी !'

कान्त कांपा। दूसरी स्त्रियाँ क्रुद्ध नागिन की तरह उस पर झपटीं— 'जवानी का मोल खाती हैं, तो क्या हुआ ? अपनी जवानी तो है; पर तू तो दूसरों की ही जवानी का मोल खाती है । तूने अपनी बेटी वेश्या के दलाल को बेची है और अब हमें उपदेश देती है !'

कान्त का दिल धक्-धक् कर उठा । उसने रोगिणी की आंखों को देखा था। उनमें न जाने क्या था, जो उसके दिल को कचोट रहा था। उसे सहसा मीनू की याद आई और वह थरथरा उठा। पर वह कुछ कहे कि रोगिणी फिर बोली । इस बार वह शान्त थी। 'तुम ठीक कहती हो, मैंने अपनी लड़की बेची है । मुझे इसका दुःख है मैं वापस जाना चाहती हूँ। मैं अपनी बच्ची को वापस लाऊँगी।' और सहसा मुड़कर देखा, फिर बोली — 'बाबू, बाबू, दिला सकोगे मेरी बच्ची को वापस ? मेरी वह भोली बालिका...!'

कान्त ने अपने को सँभाला और एक से पूछा— 'आखिर क्या बात है ? यह कौन है ?'

इस प्रश्न के उत्तर में जो कुछ बताया गया, उसका सारांश यह है; एक दिन वह सुखी परिवार की गृहिणी थी । पति था, पुत्र था, दो पुत्रियां थीं । अचानक

एक दिन लड़ाई छिड़ी, अकाल आया, लोग भूखों मरने लगे। इसका पति तब बर्मा में था; नहीं लौट सका। पुत्र भी लड़ाई में काम आया। भूखने इसे घर छोड़ने को विवश किया। जो तन बेचती हैं वे अब भी शासन करती हैं। यह भी कर सकती थी; पर इसका मन नहीं माना। लेकिन शहर में दोहरी मुसीबत थी। न भोजन मिला, न ठौर। आखिर एक दिन एक आदमी बड़ी लड़की को ले गया कि वह उसे पालेगा। उसने जाते-जाते पन्द्रह रुपए भी दिए। पर वे कब तक चलते? फिर दूर-दूर भटकना पड़ा। एकदिन सरकार ने इसे पकड़कर शहर से बाहर भेज दिया और छोटी लड़की किसी अनाथालय में भेज दी गई।

कान्त ने अनायास पूछ लिया — 'अनाथालय में?'

'हाँ, कहते तो ऐसा ही हैं।'

'उसका नाम?'

रोगिणी फिर चौंकी। बोली — 'किसका नाम? मेरी बच्चियों का? विनोद और मीनू।'

'मीनू!' कान्त अपने को न रोक सका और उसने उसे ऐसे देखा, जैसे वह सब-कुछ जानता है! बोली — 'हाँ, मीनू। क्या आप मीनू को जानते हैं, क्या आपने मीनू को देखा है?'

कान्त ने अपने को संभाला— 'नहीं, मैं तुम्हारी मीनू को नहीं जानता। मेरी एक लड़की है, उसका नाम भी मीनू है।'

यह सुनकर वह डूबने सी लगी। उसकी आंखें फैलीं। उसने थके स्वर में कहा — 'बाबू, कहो तो मैं मीनू को जानता हूँ, मैंने विनोद को देखा है। इतना ही कहो, बाबू! मुझे सुख मिलेगा मैं अभागिन...!'

कान्त के मन में रह रह-कर उठ रहा था कि कहूँ, तुम्हारी मीनू को मैंने देखा है, वह सुखी है; पर न जाने क्यों, वह रुक जाता था। न जाने क्यों, वह मीनू का सम्बन्ध इस मरणासन्न नारी से नहीं जोड़ना चाहता था। वह चाहता था कि मीनू सदा समझे उसकी माँ जीवित है, वह अपने घर पर सुखी और सन्तुष्ट है। इसी

समय रोगिणी ने चीख मारी कि सब स्त्रियाँ उस पर झुकीं। कान्त उन्हें परे हटाकर रोगिणी के पास जा बैठा और तेजी से कहा — 'सुनो, मैं सच कहता हूँ, मैंने तुम्हारी मीनू को देखा है। वह सुखी है, खूब प्रसन्न है।'

उसने आंखें खोल दीं; पर उनकी ज्योति मानों बुझ चली थी। अति धीमे स्वर में बोली — 'सच, मीनू को तुमने देखा है ?'

'हाँ।'

'वह सुखी है, खूब ?'

'हाँ।'

और फिर एक सर्द आह खींचकर रोगिणी ने आँखें मींच लीं। सन्तोष की गहरी रेखा उसके रक्तहीन विकृत चेहरे पर फैल गई और उसने कहा — 'बाबू, विनोद काक्सबाज़ार में है। पता लगा सकोगे ? क्या उसे बचा सकोगे ?'

उसका स्वर गिर चुका था, केवल फुसफुसाहट शेष थी। कान्त उसके उपर झुका और जोर से बोला — 'अवश्य पता लगाऊँगा ! तुम चिन्ता मत करो।'

उसने शायद सुन लिया। अपना दाहिना हाथ उठाया — शायद आशीर्वाद देना चाहती थी, पर वह उठ नहीं सका और साथ ही उसकी गरदन भी एक ओर लुढ़क गई। कान्त ने चौंककर कहा— 'अरे, यह तो मर गई !'

अचरज, वह क्या देखने आया था और क्या देख चला !

———

वह रास्ता

●

पिछले जाड़ों में जब ज़िला कान्फ्रेंस हुई थी तो अमजद ने प्रान्तीय सरकार के मंत्रियों के विरुद्ध इतनी ज़बरदस्त स्पीच दी थी कि सुनकर जनता काँप काँप उठी थी। उसने देश के नवयुवकों और नवयुवतियों से ज़ोरदार अपील की थी कि वे धर्म से अपना पिण्ड छुड़ा कर देश की आर्थिक और राजनीतिक आज़ादी के लिये जनता का आह्वान करें। उसने कहा था—"बिना जनता को साथ लिये आज़ादी नहीं ली जा सकती। बिना जनता में शक्ति आये हम अपने इरादे में कामयाब नहीं हो सकते। दो चार आराम कुर्सियों में लेटने वाले राजनीतिज्ञों ने क्या कभी देश को स्वतंत्र किया है? मानता हूँ उनमें बुद्धि होती है, वे योजना बना सकते हैं, वे रास्ता सुझा सकते हैं परन्तु जब तक उनकी बुद्धि, प्लान और सूझ के पीछे जनता की शक्ति नहीं होती तब तक वे सफल नहीं हो सकते........।

"धर्म ने कभी रास्ता सुझाया होगा, कभी उसका सहारा लेकर जनता भयंकर से भयंकर ख़तरों को पार कर गई होगी पर आज वही धर्म उनकी बुद्धि पर ज़ङ्ग लगा रहा है, उनके पैरों में बेड़ी बनकर पड़ा है जो उन्हें न आगे बढ़ने देता है न पीछे हटने देता है.........!"

और आगे चल कर उसने एक मार्मिक बात कही थी। उसे सुनकर मुसलमान बौखला उठे थे, हिन्दुओं ने घृणा से मुंह फेर लिया था परन्तु यही बात सुन कर भीड़ में खड़े निशिकान्त का मन न जाने क्यों बाग़ बाग़ हो उठा था। अमजद ने कहा था—" आप मेरी बात सुन कर गुस्सा कर रहे होंगे यह ठीक ही है। धर्म आपके रक्त में घुल मिल गया है। उसे भूलने के लिये कहने वाला नफ़रत का ही पात्र हो सकता है, परन्तु मैं एक बात कहता हूँ—हिन्दू ईश्वर को मानते हैं, वह सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है, अजर है, अमर है। मुसलमानों का खुदा लाशरीक है, ईसाइयों का गाड ओमनीप्रेजेण्ट

विष्णु

और ओमनीपोटेण्ट है। मैं भी क्षण भर के लिये यह बात मान लेता हूँ परन्तु यह सब मान कर भी मेरे दिल में एक बात उठती है कि जब वह ईश्वर ऐसा है तो इन्सान क्यों उसके लिये लड़ने मरने को तैयार रहता है। वह क्या अपनी हिफ़ाज़त आप नहीं कर सकता ? क्यों लोगों के बाज़ू निन्दक का गला घोंटने को फड़क उठते हैं ? क्यों वह उस सर्वशक्तिमान परमात्मा के कामों में दख़ल देता है ? क्यों नहीं सब कुछ उसी पर छोड़ देता कि जो कुछ होता है उसकी इच्छा से होता है ? क्यों वह अपने देश पर क़ाबिज़ अंग्रेज़ों को गालियां देता है ? वह सर्वज्ञ सब कुछ जानता है, वह सर्वशक्तिमान सब कुछ कर सकता है। ऐसा करके तो इन्सान उसके गुणों से इन्कार करता है, यहाँ तक कि उसकी सत्ता से भी इन्कार करता है। और कि, वह अपने आप में कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है बल्कि अपनी आसानी के लिये इन्सान ने ही उसका आविष्कार किया है, वह हमारा निर्माता नहीं बल्कि हम ही उसके निर्माता हैं। आप मुझे नास्तिक, काफ़िर कह सकते हैं परन्तु यह सब मेरी सूझ नहीं है यह तो आपकी मान्यताओं की तर्कपूर्ण परिणति है। लेकिन आप मुझसे पूछें तो मैं कहूँगा कि हमें ईश्वर की चिन्ता छोड़ देनी चाहिये। जो इतने विशाल ब्रह्माण्ड का, रहस्यमय नक्षत्र लोक का और प्राणी मात्र का सृष्टा है वह क्या हमारे जैसे नगण्य प्राणियों की सहायता की अपेक्षा करता है ? सहायता भी वह जो उसके बनाये संसार में भयंकर और वीभत्स रक्तपात का कारण होती है………।"

"मैं सच कहता हूँ अगर ईश्वर है तो वह हम लोगों से बेहद नाराज़ है और तभी उसने हमें इस गुलामी में जकड़ा है। इसीलिये मैं कहता हूँ हमें उसे छोड़ देना होगा। हमारे पास बहुत काम है। हम अपने को नहीं जानते, अपने पड़ोसी को नहीं पहिचानते। अपने और पड़ोसी में अन्तर समझते हैं। जो अन्तर को मानता है वह मानवसेवा कैसे करेगा ? आज तो सबसे बढ़कर राष्ट्र सेवा का सवाल है। राष्ट्र की आत्मा आज तड़प रही है। राष्ट्र आज खून से लथपथ पड़ा है। विश्व की पीड़ा उसी के कारण बढ़ रही है। वह उसीके विशाल शरीर का ही तो एक अंग है। तब अचरज है वह हमारा सर्वज्ञ ईश्वर कैसे चैन से बैठा है……… ।"

और इसी तरह बहुत-सी बातें निशिकान्त ने सुनीं। सुनकर सोचा आदमी समझदार है। ऐसा सोचने के कारण थे। उसके दिमाग में यह प्रश्न स्वयं कई दिनों से जाग आया था। अभी अभी उसने आर्य समाज की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया था क्योंकि उसका विश्वास हो चला था कि धर्म और ईश्वर मनुष्य को अपनी सत्ता से इन्कार करने का सन्देश देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रहे हैं। अपने से इन्कार करना आत्म-हत्या है, इसीलिये पाप है। इसीलिये अपने मस्तिष्क के इन विचारों को विस्तृत गूंज सुनकर उसको बड़ी प्रसन्नता हुई। जी में उठा कि अभी चल कर अमजद को धन्यवाद दें लेकिन तभी उसने सोचा—मैं सरकारी नौकर और वह उग्र राजनीतिक कार्यकर्ता! मेरा उसका मिलन कैसा?

अचानक उसके तीन हफ्ते बाद एक दिन वह दफ्तर पहुंचा ही था कि बड़े बाबू ने पुकारा—निशिकान्त बाबू!

जी।

यहाँ आइये।

वह वहाँ पहुँचा तो अचरज से उसने देखा वहाँ अमजद बैठा था। मुस्कराया, बड़े अदब से आदाब अर्ज़ की। बड़े बाबू बोले—देखो निशिकान्त बाबू! आज से ये तुम्हारे पास काम करेंगे।

निशिकान्त की छाती में बड़े ज़ोर से धक्का लगा, मुंह से अचरज भरे शब्द निकले—मेरे पास......?

हाँ— बड़े बाबू बोले— काम सीखने का सबसे अच्छा प्रबन्ध तुम्हारी ब्रांच ही में हो सकता है। नये आदमी हैं, बी० ए० तक पढ़े हैं।

और फिर मुस्करा कर कहा—शायर भी हैं।

फिर अमजद से बोले—जाइये मिस्टर। ये बाबू आपको काम बता देंगे, मन लगा कर काम करिये। शुरू का प्रभाव अन्त तक बना रहता है। अच्छा काम करोगे तो नौकरी मिल जावेगी और तरक्की के लिये भी रास्ता खुला रहेगा।

अमजद बिना बोले उठा और निशिकान्त के साथ चला आया। उसने अपनी

मेज़ के पास एक कुरसी सरका कर कहा—बैठिये।

वह बैठ गये और कुछ खिसिया कर बोले—आपको कुछ ताज्जुब हुआ ?

जी ?

आप मुझे जानते हैं ?

जी, उस दिन आपका लेक्चर सुना था। आप साम्यवादी हैं न ?

जी-·-उनकी वाणी गिरी—मुझे बड़ी शर्म आरही है, दिल बैठा जा रहा है परन्तु क्या करूँ······!

क्या बात हुई आखिर ?

क्या कहूँ, जी में यही उठ रहा है कि खुदकुशी कर लूँ पर बीवी, बच्चे हैं।

खुदकुशी तो पाप है !

बेशक।

और कोई वसीला नहीं है ?

नहीं।

कोई तिजारत·········?

वे हँसे—उसके लिये पैसा कहां से लाऊँ ?

ठीक कहते हैं आप !

आपकी क्या राय है ?

मेरी राय ?

जी।

निशिकान्त क्षण भर के लिये ठिठका, फिर बोला—मैं सरकारी नौकर हूँ। सरकार को धोखा देने की कल्पना भी मैंने कभी नहीं की। जिस दिन ऐसी बात मेरे मनमें उठेगी उस दिन मैं इस्तीफ़ा देकर अलग हो जाऊँगा, परन्तु मैं मानता हूँ मैं बहुत कुछ आपके विचारों का आदमी हूँ। आपकी इज्ज़त मेरे दिल में है इसीलिये सोचता हूँ यह नौकरी क्या आपके लिये ठीक रहेगी ?

बिल्कुल नहीं—अमजद ने कहा—यह मैं खूब जानता हूँ। मैंने मना भी

किया था परन्तु मि० करामत अली, एम० एल० ए० ने मुझे मजबूर किया। उनका भी दोष नहीं है, मेरी हालत ही ऐसी थी कि उन्हें कोई और रास्ता न सूझ पड़ा। मुझे अपनी फ़िकर इतनी नहीं सताती जितनी अपनी बेगुनाह बीवी की.........।

कोई प्राइवेट नौकरी क्यों नहीं ढूंढ़ लेते ?

वे हँसे—उन्हें आप क्या समझते हैं ! वे पूँजीपति हैं और पूँजीपति Love me and love my dog में विश्वास करते हैं। वे तनिकसा भी मतभेद नहीं स्वीकार करेंगे। वे मेरे विचार जानते हैं, पास भी नहीं फटकने देंगे।

सो तो ठीक है।

फिर......?'

फिर आप बेबस हैं। आते रहिये। काम मैं बता दूँगा। यह इण्डेक्स है, फाइलें हैं, डायरियाँ हैं। आप चाहें तो आज से ही काम शुरू कर दीजिये। डाक पड़ी है, लिफ़ाफ़े बना लीजिये। अमजद ने चुपचाप डाक सँभाली और दूसरी मेज़ पर बैठकर लिफ़ाफ़े बनाने लगा। उसका हाथ काँपने लगा था, पते ठीक ठीक नहीं लिखे जा रहे थे। वह बार बार निशिकान्त के पास आता और पूछने लगता लेकिन फिर भी उसका मन नहीं जमा। उसको लेकर दफ़्तर में इधर उधर चीमागोइयाँ होने लगीं। वह उठा, बोला—मैं कल आऊँगा। निशिकान्त मुस्कराया—ठीक है, आप कल सबेरे दस बजे आ जाइये। विश्वास रखिये मेरे होते आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी।

उसने कहा—आपकी मेहरबानी है। और वह चला गया; परन्तु उसके बाद एक एक करके अनेक कल आये पर अजमद नहीं आया। जैसे जैसे दिन बीतते गये निशिकान्त उसके लिये चिन्तित होता गया। वह घर नहीं जानता था ; वह किसी से उसकी चर्चा करना भी पसन्द नहीं करता था, इसीलिये वह चिन्ता अन्दर ही अन्दर उसे विकल बनाती रही कि एक दिन एक लड़का उसके पास आया। उसका सिर घुटा हुआ था। आँखों से भयङ्करता टपक रही थी। बदन काला और नंगा था। उसने केवल एक मैला कुचैला तहमद लपेटा था। उसने आते ही कहा—निशिकान्त बाबू तुम हो। (निशिकान्त को उसने निसिकान्त कहा था) निशिकान्त ने जवाब दिया — हाँ

मैं ही हूँ।

यह परचा अमजद मियाँ ने दिया है।

उत्सुकता और अचरज के साथ निशिकान्त ने वह परचा ले लिया, पढ़ा—

जनाब बाबू निशिकान्त साहब, तस्लीम !

क्या आप मेहरबानी करके आज शाम को बन्दे के ग़रीबख़ाने पर तशरीफ ला सकेंगे ? एक निहायत ज़रूरी मसले पर आपकी राय का मुतलाशी हूँ। बवजह अलालत आपकी ख़िदमत में हाज़िर नहीं हो सकता। माफ़ी का ख़्वास्तगार हूँ।

नियाज़मन्द,

अमजद

निशिकान्त मुस्कराया फिर उस लड़के से पूछा—घर कहाँ है ?

डोगरों की मस्जिद के पीछे।

कह देना, आऊँगा।

और जब सन्ध्या को निशिकान्त डोगरों के मोहल्ले में पहुँचा तो उसे नाक दबा लेनी पड़ी, माँस की बदबू वह सह न सका। छी, छी—उसने सोचा—कैसी गन्दी जगह है ? कैसे रहते हैं यहाँ ये लोग ?

कि तहमद वाला लड़का पास से गुज़रा—उधर, उधर बाबू जी, वह रहा अमजद का घर। निशिकान्त उधर देखे कि अमजद आप ही टाट का परदा उठा कर बाहर आ गया—आइये आइये। बड़ी तकलीफ़ की आपने, आदाब अर्ज़।

आदाब अर्ज़—निशिकान्त मुस्कराया—तकलीफ़ की क्या बात है ? आपकी तबियत कैसी है अब ? 'शुक्रिया, बुख़ार अब कुछ हल्का है।'

और तब तक वे दोनों टाट का परदा उठा कर अन्दर आ गये थे। जैसा कि निशिकान्त ने देखा वह एक कच्ची दहलीज़ में खड़ा था, जिसकी दीवार सील और जालों से भरी हुई थीं। जगह जगह से लेबड़े उतर रहे थे। यहाँ वहाँ से छत के बरगे भी खिसक गये थे और कड़ियाँ दोहरी होने के लिये बूढ़ों से होड़ ले रही थीं। परदा बेहद भोदा और काला था। सामान के नाम पर एक मोढ़ा और एक चारपाई वहाँ पड़ी थी

जिस पर यथाशक्ति साफ़ बिस्तर बिछा था। उसी पर अमजद लेटा हुआ था। उसी के एक कोने पर वह बैठने लगा कि अमजद ने कहा—आप मोढ़े पर आराम से बैठिये।

यहीं ठीक हूँ।

मानिये तो......।

तकल्लुफ़ न कीजिये। आप कमज़ोर हैं, लेट जाइये।

जी बुखार में कमजोरी हो ही जाती है।

जी हाँ! जान निकाल देता है बिल्कुल।

अमजद मुस्कराया—जान ही तो नहीं निकालता। सिसकता छोड़ देता है।

निशिकान्त भी मुस्कराया—ऐसा न कहिये, ठीक हो जाँयगे। मेरे लिये कोई ख़िदमत फ़रमाइये। अमजद ने कहा—बुलाया है तो अर्ज़ करूँगा ही। न जाने क्यों आपसे कुछ मोहब्बत सी हो गई है। निशिकान्त हँस कर रह गया।

आपने जो कुछ उस दिन कहा था वह मेरे दिमाग़ में बराबर घूम रहा है। मैं सोचता हूँ मैं नौकरी नहीं कर सकता। करनी भी नहीं चाहिये, लेकिन......?

लेकिन क्या......।

क्या बताऊँ। जीने के लिये पेट भरना ज़रूरी है और वह मैं कर नहीं पा रहा हूँ। घर की हालत जो कुछ भी है वह बता नहीं सकूँगा।

निशिकान्त ने सहानुभूति भरे स्वर में कहा—बताने की ज़रूरत भी नहीं है मैं देख रहा हूँ.........।

जी, यही बात है वरना निशिकान्त बाबू, मैंने तो अपनी ज़िन्दगी का यही उसूल बनाया था कि देश की आज़ादी के लिये जान लड़ा दूँगा। आज़ादी की पहली शर्त यह थी कि देश के सब हिन्दू मुसलमान एक हों और इन्सान बनें। उसके लिये मैंने एक ही रास्ता सोचा था।

क्या!

यही कि हम सब अपने को इन मज़हब और खुदा के महन्तों से बरी करलें वही भाई-भाई को लड़ाते हैं।

तुम ठीक कहते हो। मुझे भी ऐसा ही लगता है।

ज़रा सोचो तो सही, हम सब एक दूसरे से इसलिये लड़ते हैं कि मैं मुसलमान हूँ और आप हिन्दू। लेकिन मुझे मुसलमान बनाया किसने ? मैंने जब से होश संभाला तब से अपने को मुसलमान पाया और यही सुना कि हिन्दू काफ़िर हैं, गुमराह हैं, उनको रास्ते पर लाना हमारा पहला फ़र्ज है। उस फ़र्ज को पूरा करने के लिए झूठ, फरेब, मक्कारी, धोखेबाज़ी, जो कुछ भी मैं करूं सब जायज़ है। यही हालत तुम्हारी है।

कुछ ज़्यादा ही है दोस्त ! हम लोग तुम्हारी छुई चीज़ को भी नापाक समझते हैं।

हाँ ! देख लिजिये कुछ हद है हैवानियत की ?

बेशक। वह धर्म और तहज़ीब क्या जो हमें ऊँचा नहीं उठा सकती, जो हमें इन्सानियत के रास्ते पर नहीं ला सकती।

कभी कभी तो मुझे अपने मुसलमान होने पर घृणा होने लगती है।

निशिकान्त ने कहा — इसमें तुम्हारा क्या दोष ? यह तो परमेश्वर की बात है। उसी ने तुम्हें मुसलमान बनाया और मुझे हिन्दू। हम आप तो कुछ बने नहीं, तब क्यों इस बात के लिए नफरत या मोहब्बत करें। सोचने की बात केवल इतनी है कि क्या हम इन्सान बन सकते हैं ?

नहीं बन सकते।

क्यों…?

क्योंकि जब तक खुदा और मज़हब हैं तब तक इन्सान की अक़्ल आज़ाद नहीं हो सकती। निशिकान्त झिझका — शायद तुम ठीक कह रहे हो लेकिन मैं सोचता हूँ ईश्वर और धर्म के विरुद्ध एकदम सीधे जेहाद बोलने से तो हम कुछ बना न सकेंगे। सारी दुनियां हमारी दुश्मन बन जावेगी।

अमजद क्षण भर के लिए ठिठका — यह तो आप ठीक कहते हैं। मेरी यही हालत है मुसलमान मुझसे नफ़रत करते हैं। हिन्दू मेरा यकीन नहीं करते। कोई मुझे

पास नहीं फटकने देता। दुःख दर्द में मैं अकेला तड़पता रहता हूँ। गरीबी इतना तंग नहीं करती जितनी नफ़रत ।

आप ठीक कहते हैं, जहां सहानुभूति है वहाँ गरीबी रह ही नहीं सकती ।

मन कहता है छोड़ इस झगड़े को । कौन पूछता है तुझे और तेरी ईमानदारी को, पर दिमाग बोल उठता है जिस रास्ते को तू ठीक समझता है उसे केवल चंद दुनियावी मुश्किलों की वजह से छोड़ना बुजदिली है। उस दिन दफ़तर चला तो गया पर अभी तक ऐसा लग रहा है कि कोई बड़ा भारी पाप किया हो......।

निशिकान्त सहानुभूति से उमड़ा पड़ता था, बोला — एक बात कहता हूँ, तुम दिल्ली चले जाओ।

दिल्ली ?

हाँ, वहाँ तुम्हारी पार्टी है, नेता हैं, संगठन है, तुम्हारी पूछ हो सकती है।

कहते तो तुम ठीक हो। सोचूँगा।

किसी को जानते हो

पार्टी के नेता मिस्टर ज्योतिप्रसाद को ।

तब ठीक है। सुना है वे तो पैसे वाले भी हैं।

पैसे वाले होते ख़तरनाक हैं । हर चीज़ को पैसे के मापदण्ड से नापते हैं ।

पर भाई पैसे बिना क्या काम चल सकता है ? यह ख़तरा तो उठाना ही पड़ेगा।

अच्छा। अगर तुम्हारी यही राय है। तुम नहीं जानते मैं तुम्हारी राय की...

हाँ, हां, जरूर जाओ — बिना सुने ही निशिकान्त ने कहा। और वह उठा—अच्छा चलूं अब, देर हो रही है।

अमजद कृतज्ञता से हँसा — जायंगे। आपको बड़ी तकलीफ हुई लेकिन रुकिये पान लाता हूँ ।

नहीं, नहीं, मैं पान नहीं खाता ।

आखिर......।

विष्णु

यक़ीन रखिये मुझे ज़रा भी परहेज़ नहीं है ।

और वह मुड़ा कि सहसा अन्दर वाले दरवाजे पर निगाह अटक गई । दो पैर एक कोने में जमे हुये थे । उसके उठते ही तेज़ी से अन्दर ग़ायब हो गये । निशिकान्त ने साफ़ साफ़ देखा वे पैर किसी नवयुवती के थे, गोरे सुडौल और उठे हुये ।

वह आदाब अर्ज़ करके बाहर निकल आया । अमजद भी दरवाजे तक आया तब काफी गहरा अंधेरा हो आया था और बिजली की धीमीं रोशनी रसोई घर की सफेदी की तरह चमक रही थी । दरवाज़े पर रुक कर अमजद ने हिचकिचाते हुये कहा—निशिकान्त बाबू......।

जी......। वह मुड़ा ।

माफ़ करिये में एक बात......।

हाँ, हाँ कहिये......।

आपके पास अगर दो-चार रुपये हों तो मेहरबानी करके उधार दे दीजिये । मैं जल्द अज़ जल्द लौटा दूँगा । सच जानिये दवा........।

निशिकान्त एक दम बोल उठा—मैं जानता हूँ । मेरे पास केवल पांच रुपये हैं, उन्हें लौटाने की कोई जल्दी नहीं है ।

अमजद ने हाथ बढ़ा कर रुपये ले लिये । निशिकान्त ने धुंधले प्रकाश में देखा कि हाथ कांप रहा है और चेहरा सफ़ेद होगया है । वह तब एक क्षण के लिये भी वहाँ नहीं रुका और शीघ्रता से आगे बढ़ गया ।

× × × ×

सकीना की आंखों में पीड़ा गहरी थी, उससे बोला नहीं जा रहा था । वह निढाल-सी खाट पर पड़ी थी । अमजद ने उसे देखा । पूछा--तबीयत ज़्यादा ख़राब है ? सकीना कुछ बोली नहीं, शून्य में ताकती रही ।

सकीना !

जी......।

पूछता हूँ तबियत ज़्यादा ख़राब है ।

उसने मुस्कराने की चेष्टा की। मुख का पीलापन गहरा हो आया। बोली—क्या कहा उन्होंने ?

उन्होंने......।

जी।

सहसा चहरे का रंग पलटा पर किसी तरह अपने को क़ाबू में करके उसने कहा—समझलो कि मना कर दिया।

समझ लूँ। क्या माने......। आंखें ऊपर उठाकर सकीना बोली।

हां सकीना ! हमें समझना ही पड़ेगा। उनका कहना है, मैं बहुत घबराता हूँ मामूली बीमारी है, हकीम की दवा से ठीक हो सकती है। वे डाक्टर को बुलाकर केस बिगाड़ना नहीं चाहते। मुल्क की सेवा के लिये उन्हें मेरी जरूरत है......।

स्वर तेज़ होने लगा था कि सकीना मुस्कराई—ठीक तो कहा उन्होंने ?

सकीना......।

मुल्क की खिदमत के सामने किसी की बीमारी कोई चीज़ नहीं है।

आवाज फिर गिरी—यह मैं मानता हूँ सकीना, पर यहाँ बात कुछ और ही है। बीमारी साधारण नहीं है, उसकी वजह भी आरज़ी नहीं है। पेट में डालने को जिसे पूरा पूरा खाना नहीं मिला। जिसकी कोई ख्वाहिश कभी पूरी नहीं की गई, गरीबी और मुफ़लिसी ने जिसके बच्चों को उठा लिया, जिसने अपनों की ठोकरें खाईं और जो दूसरों की मोहब्बत से महरूम रहा उसकी बीमारी क्या बीमारी है ? वह तो घुन है जो तन बदन की मिट्टी बना कर रहेगा।

अमजद की आंखों में नफरत फिर उमड़ने लगी ! सकीना ने अपना पतला हाथ ऊपर उठाया, आंखों में आंखें डालीं। उनमें रोशनी नहीं थी पर एक निमन्त्रण ज़रूर था जो किसी भी कठोर हृदय को पिघला सकता था लेकिन अमजद ने उसे नहीं देखा। देखता भी कैसे, उसकी अपनी आंखों से चिनगारियां फूट रही थीं वह कहता रहा–मुझे उनसे कोई ज़्यादा शिकायत नहीं है। मैं उनके पैसे पर पलने नहीं आया था सिर्फ़ वे मुझे अपना समझते। मुझे उन्होंने सदा ग़ैर समझा। मेरा मुसलमान होना सदा

उनके हिन्दू पन को ठेस पहुँचाता रहा। एकबार भी वे या उनकी बीवी तुम्हारा हाल पूछने नहीं आई। उन्हें हमसे ज़रा भी हमदर्दी नहीं है। हमसे ज्यादा उन्हें मोटर प्यारी है। दूसरों के लिये केवल तीन लफ़्ज वे जानते हैं त्याग, तपस्या और सेवा। लेकिन इसके लिये इन्सानियत की शर्त वे नहीं मानते। उसका उन्हें ज़रा भी एहसास नहीं है। नहीं तो क्या वे एक दिन भी हमें अपने घर न बुलाते………।

सकीना से रहा नहीं गया, बोली—क्या हो गया है तुम्हें। किसी की बुराई करना गुनाह है और फिर उसकी जो हमें पनाह दिये हुये हैं……।

चुप रहो सकीना—वह चिल्ला उठा—मैं किसी की पनाह में नहीं रहना चाहता। पनाह गुलामी है। उनके पास पैसा है इसीलिये वे पनाह दे सकते हैं! क्या यह इन्सानियत है? क्या यह खुदाई है? यह तो……यह तो……।

तुम्हें क्या हो गया है? तुम चुप क्यों नहीं होते। मेरा दिल बैठा जा रहा है। —सकीना ने फिर मुश्किल से अपने को सँभालते हुये कहा।

अमजद की आंखों में आंसू भर आये–मुझे अफ़सोस है मैं भी तुम्हारी बीमारी को भूल चला था। लेकिन मैं क्या करूँ, सकीना! मैं उनके पास गया, बताया कि तुम घुलती जा रही हो, इल्तजा की कि एक बार डाक्टर शर्मा या हमीद को दिखा दें तो वे चिल्ला उठे तुम्हारे दिमाग में भी अमीरी घुस गई है, अमीरी गुनाह है, उसे भूल जाओ। जाओ उसी दवा से ठीक हो जावेगी।

वे शायद ठीक कहते थे।

ख़ाक ठीक कहते थे। वे ढोंगी हैं, उन्हें बोलने की भी तमीज नहीं है। हो भी कैसे? वे दूसरे को इन्सान समझते ही नहीं। मैं……।

सकीना ने उठना चाहा पर उठ न सकी, अधबीच में ही लड़खड़ा कर गिर पड़ी, बदन निढाल हो गया, आंखें मिंच गईं! अमजद ने देखा तो चीख उठा—सकीना!!

वह बोल नहीं सकी, हाथ हल्की सी हरकत करके रह गया।

सकीना! सकीना!! क्या हुआ तुम्हें………?

अमजद गबरा उठा । जल्दी जल्दी मुंह पर पानी के छींटे दिये, हाथ पैर सहलाये, तब कहीं जाकर सकीना ने आंखें खोलीं । धीरे से बोली — घबराओ नहीं । ऐसी बात नहीं है । कमज़ोरी के कारण दिल में धड़कन बढ़ गई है । ठीक हो जायगी ।

मैं जानता हूँ सकीना ! यह कब और कैसे ठीक होगी ।

सकीना मुस्कराई — तुम न जानोगे तो और कौन जानेगा, मेरे सरताज़ ! फिर करवट लेकर सकीना ने अपने दोनों पीले हाथ अमजद की गोदी में रख दिये और आंखें मीच लीं, मानो उसे राहत मिल गई ।

\+ \+ \+ \+

उधर निशिकान्त को अमजद का कोई समाचार नहीं मिला तो हिम्मत करके एक दिन वह अमजद के मकान पर पहुँचा । उसके दरावजे पर टाट का फटा परदा उसी तरह पड़ा हुआ था । वह ठिठक गया, आवाज़ दी — अमजद साहब !

कोई नहीं बोला !

फिर पुकारा — अमजद साहब !

अन्दर से एक प्रौढ़ आदमी निकल आया । उसका चेहरा तना हुआ था, आंखें चमक रही थीं । बदन पर केवल एक चारखाने का तहमद था । आकर बोला — हां ! क्या है ?

'यहाँ अमजद साहब रहते थे ?'

रहते थे ।

अब कहाँ है ?

दिल्ली ?

बच्चे भी ?

हाँ बच्चे भी । बीमार हो गई थी ।

निशिकान्त ने विनम्र होकर कहा — माफ़ करियेगा, क्या आप बता सकेंगे वे यहाँ आये थे ?

आदमी ने सिर से पैर तक निशिकान्त को देखा फिर पूछा— आप क्यों

पूछते हैं ? क्या मतलब है ?

मैं अमजद का दोस्त हूँ ।

उसने अजीब मुद्रा बना कर कहा — शायद स्कूल में साथ पढ़े होंगे नहीं तो हिन्दू की क्या दोस्ती ! बहुत दिन तक अमजद भी इसी भूल भुलैया में पड़ा रहा । न जाने क्या क्या कुफ्र की बात करता था । दिल्ली में कोई लाला है लीडर । उनके पास जूतियाँ चटखाता रहा, बीवी मरने को हो गई पर किसी ने पूछा भी नहीं । तब खुदा याद आया । याद आया तो दिन भी फिरे । अब यहाँ मुस्लिम नाईट स्कूल में हैड-मास्टर हो गया है । कल ही आयेगा ।

निशिकान्त ने सुन लिया । एक दफ़ा तो धक से रह गया, फिर सँभल कर बोला — जी अब उनके घर में ठीक हैं न ?

अब तो खुदा का शुक्र ही शुक्र है ।

यही चाहिये ।

वह मुड़ा कि उस प्रौढ़ व्यक्ति ने पूछा — तुम्हारा नाम.........?

कोई ज़रूरत नहीं । मैं आकर मिल लूँगा ।

और वह शीघ्रता से आगे बढ़ गया कि कोई पुकार न ले । वह उस वातावरण से दूर भाग जाना चाहता था । उसका दम घुट रहा था और दिमाग में एक अजीब उमस सी पैदा हो रही थी । वह कुछ भी स्पष्ट नहीं सोच पा रहा था और क़दम इस तेज़ी से बढ़े चले जा रहे थे कि जैसे ही वह उस बस्ती से बाहर निकला तो एक व्यक्ति से टकरा गया । उसने चौंककर पीछे हटते हटते कहा—माफ़ करना मैं जल्दी में था ।

वह व्यक्ति बोला — कोई बात नहीं... कि एक दम निशिकान्त को पहिचान कर उसने कहा — अरे आप निशिकान्त बाबू ! कहाँ गये थे ? निशिकान्त ने भी उन बन्धु को पहिचाना, बोला — ज़रा एक मित्र के यहाँ तक गया था ।

कौन ?

अमजद ।

वे चौंके—अमजद ! वह कब से तुम्हारा मित्र बना । धोखेबाज़ कहीं का ?

साम्यवादी बनता था ! अब पाकिस्तान को अपना लक्ष्य बताता है।

हाँ सुना तो है।

उन बन्धु के साथ एक और साथी थे बोले — सुना नहीं मैंने आँखों से देखा है। जो अमजद धर्म के विरुद्ध बोलते नहीं थकता था वह आज खुदा की कुदरत, मुसलमान धर्म की वैज्ञानिकता तथा कुरान के फलसफे पर ऐसा बोलता है जैसे कोई पहुँचा हुआ मौलवी। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये जो प्राण तक देने को तैयार था वह अब पाकिस्तान पर कुरबान है। बेशक — पहिले साथी ने कहा — बेशक इस बेईमान क़ौम का क्या भरोसा ! यह क्या कभी किसी की हुई है ?

न कभी हुई और न कभी होगी।

निशिकान्त को झुँझलाहट हो रही थी। उसे लग रहा था कि जैसे वह अपनी पराजय स्वीकार करता जा रहा है। उसने कहा—मुझे ताज्जुब होता है......!

ताज्जुब कैसा मैं तो उसे सदा से कमीना समझता रहा हूँ।

अनायास निशिकान्त के मस्तिष्क में एक बात उभर आई वह तेज़ी से बोला—अच्छा मान लिया वह कमीना है परन्तु इस कमीनेपन का कारण क्या है ? बिना कारण के तो कभी कुछ होता नहीं। उसे यदि हम खोजें तो मेरा विश्वास है उसके पैदा होने में हमारा भी बहुत बड़ा हाथ है। उसका कमीनापन हमारे कारण है कमीने हम है तब यह हमारे हाथ में है कि उस कारण को नष्ट करदें जिसने उसे कमीना बनने को मजबूर किया है। और उसके कमीनेपन को दूर करने से पहले अपने कमीनेपन को दूर करने की कोशिश करें।

इतना कहकर वह शीघ्रता से आगे बढ़ गया। साथी अचानक भँवर में पकड़े गये तैराक की भांति बेबस देखते ही रह गये।

अमजद फिर वहीं लौट आया। अब वह स्कूल का हेडमास्टर था और स्थानीय लीग का सेक्रेटरी। उसकी इज़्ज़त थी, पूछ थी। मुसलमान अदब से सलाम झुकाते थे और मजलिसों में उसे ऊँचा पद मिलता था। निशिकान्त ने कई बार दूर से उसे देखा; चाहा, पुकार ले पर न जाने क्यों झिझक गया—देखना चाहिये वह स्वयं आयेगा या

नहीं। लेकिन वह नहीं आया तब एक दिन निशिकान्त आप ही उसके घर पहुँचा। अब वह बाज़ार में एक पक्के मकान में रहता था जिसकी मरदानी बैठक में कुरसियों का प्रबन्ध था। वह सन्ध्या से पहले गया था कि उससे अकेले बात चीत कर सके और वह तब अकेला ही था। निशिकान्त को देखा तो एक बार उसके चेहरे का रंग पलटा फिर बरबस मुस्करा पड़ा। निशिकान्त ने कहा—अमजद बाबू, क्या बात है दिखाई नहीं दिये। अमजद सहमा सहमा बोला—माफ़ करिये। काम की ज्यादती की वजह से आपके नियाज़ हासिल न कर सका। आपको मेरी चिट्ठी मिली होगी……।

जी, शुक्रिया, मनीआर्डर मिल गया था।

जी आप शर्मिन्दा करते हैं। मैंने सोचा था मैं जाऊँगा ही पर वे बोलीं न जाने कब जाना हो मनीआर्डर कर दीजिये। जो वक्त पर काम आया था उसे ऐसा मौका क्यों देते हो कि आप पर शक करे।

इस बात से निशिकान्त बड़ा प्रभावित हुआ—नहीं नहीं, ऐसी बात नहीं थी।

अमजद ने कहा—आपके लिये नहीं परन्तु आज दुनियां के लिये यह बात ठीक है।

होगी—निशिकान्त बोला—परन्तु मैंने सुना है अब आप मुस्लिम लीग में शामिल हो गये हैं।

क्षण भर में उसके चेहरे का रंग कई बार पलटा, झिझका परन्तु अन्त में दृढ़ होकर उसने कहा—बेशक, आपने ठीक सुना है और मैं कहूँ मुझे उसका जरा भी दुख नहीं है।

निशिकान्त अचकचाया—मैं दुख की बात नहीं कहता परन्तु मैं तो यही जानना चाहता हूँ क्या आपके ख्यालात पहले जैसे ही हैं।

अमजद ने अपने को फिर सँभाला—ख्यालात की बात यह है कि मैं अब भी मुल्क की आज़ादी का हामी हूँ। अब भी मुझे मजहब और खुदा से कोई खास मोहब्बत नहीं है परन्तु मैं मानता हूँ मुझे कई वजूहात से इस बारे में समझौता करना पड़ा।

क्या वजह हैं वे, बता सकेंगे ?

वजह सबसे बड़ी एक है वह यह है कि हिन्दू-मुसलमान एक नहीं हो सकते। हिन्दू अमीर हैं, तंगदिल हैं, वे गरीब मुसलमानों को अपना नहीं समझ सकते।

इसलिये आप पाकिस्तान के हामी हो गये हैं।

बेशक मैं मानता हूँ पाकिस्तान के बिना इस मुल्क को आज़ादी नसीब नहीं हो सकती। आज़ादी के लिये जरूरी है कि मुसलमान अपने को महफ़ूज और ताक़तवर समझें। आजकल की हालत में वे सरमायादार हिन्दुओं की दया......।

निशिकान्त ने देखा अमजद कुछ तेज़ होता जा रहा है। उसने एकदम बात टालनी चाही और पूछा—अच्छा छोड़िये इन बातों को। कहिये आपके घर में से तो ठीक हैं।

जी हाँ—अमजद ने कहा—खुदा का लाख लाख शुक्र है। उसी की बीमारी ने मुझे रास्ता दिखाया है। मैं गरीब था अकेला था। मि० ज्योतिप्रसाद बड़े नेता हैं अपने को सरमायादारों का दुश्मन कहते हैं परन्तु वे हिन्दू हैं और सरमायादारी धर्म की शर्त है। उन्हें हमदर्दी तो ज़रा भी नहीं थी। उनके घर में हमारा सलूक अछूतों से भी बदतर था। मेरी बीवी उनके घर में कहीं भी बेतकल्लुफ़ी से नहीं बैठ सकती थी। लेकिन आप कह सकते हैं ये बातें इतनी जल्दी दूर नहीं हो सकतीं, मैं भी मानता हूँ। पर इन्सानियत तो कोई चीज़ होती है. उस दिन जब मेरी बीवी की हालत नाज़ुक थी, मुसलमान मुझ से नाला थे, नफ़रत करते थे, मैं कुदरतन अपने हिन्दू दोस्त की तरफ मुड़ा पर सच मानना उसने मुझे बातों में उड़ा दिया। मुझे अपने पास भी नहीं फटकने दिया ....!

कहते कहते अमजद का स्वर बहुत कड़ुवा हो उठा। उसने कहा—उसकी हालत गिरती ही गई तो मैं लाचार अपने एक पुराने मुसलमान दोस्त के पास गया। उसने मेरी मदद की, वह अमीर नहीं था परन्तु जो कुछ भी वह कर सकता था उसने किया। अपनी बीवी को लेकर रात रात भर मेरे घर रहा, उसने मेरी बीवी को बचा लिया। पैसा उसने दिया, पर पैसे से ज्यादा उसने मुझे वह चीज़ दी, जो इन्सान को इन्सान बनाती है, वह अहसास है, वह हमदर्दी है। उस दिन मैंने जाना अपने कौन हैं...।

विष्णु

भावों की उत्तेजना में वह खोने लगा था । उसकी रक्तमयी आंखों में जलकण चमक उठे थे । उसने कहा — निशिकान्त बाबू ! तुम्हारी याद उस दिन भी मुझे भूली नहीं थी ; आज भी खुदा और मजहब का ख्याल मुझे कंपा देता है । अब भी मैं एक ऐसी क़ौम का ख्वाब देखा करता हूँ जिसके बाहर भीतर कहीं कोई भेद न हो ।

निशिकान्त मुस्करा उठा । उसने अमजद का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा — दुनियां का हर बड़ा काम शुरू में सपना ही मालूम होता है, अमजद बाबू ! तुम मुस्लिम लीग में शामिल हो गये हो तो फ़िक्र क्या है । पाकिस्तान होने पर भी हिन्दू मुस्लमानों को यहीं और इसी तरह रहना होगा । उनके आपसी सम्बन्ध किस प्रकार सुधर सकते हैं, वह समस्या बनी ही रहेगी । उसको आप और मेरे जैसे व्यक्ति ही सुलझा सकते हैं । उसका रास्ता वही है जो एक दिन आपने सुझाया था ।

और फिर उठते उठते कहा — अब चलूं ! देर हो रही है । एक दिन आपके स्कूल में आऊँगा । अब आप बड़े आदमी हैं किसी दिन गरीब खाने पर तशरीफ लाइये ।

अमजद न जाने कैसा हो चला । बोला – लेकिन आप मुझ से नफ़रत नहीं करते निशिकान्त बाबू ? हिन्दू तो......।

निशिकान्त मुस्कराया — अमजद बाबू ! मैं नफ़रत क्यों करूँ ? मैं क्या केवल हिन्दू ही हूँ ?

आपही ने एक दिन बताया था कि यह धर्म हमारी कमाई नहीं है और फिर आपके दृष्टि कोण को समझने के लिये मुझे आपसे और भी दोस्ताना करना होगा । आप लीग में हैं इसी कारण नफ़रत करने की बात मुझे एकदम लचर मालूम होती है··· और फिर मुड़कर उसने कहा — मुझे बड़ी प्यास लगी है पानी पिलाइये ।

अमजद एक दम बोला — हाँ, हाँ, ! अभी लाता हूँ । तशरीफ़ रखिये ।

वह उठा कि अन्दर जाये पर न जाने क्यों एक दम झिझक गया — लेकिन मेरे घर का पानी क्या आप पी सकेंगे ?

'क्यों न पी सकूंगा । उसमें हुआ क्या ?

अमजद अन्दर चला गया । निशिकान्त ने देखा चिक के पीछे दो क़दम एकदम पीछे हटे । उन्हें देखकर उसके मन में उठा—क्या है जो इतने भेद का कारण है। क्या मैं चाहूँ तो भी ये कारण रह सकेंगे कि अमजद ने आकर कहा — निशिकान्त बाबू ! माफ़ करिये.........।

निशिकान्त एक दम बोला — क्यों क्या घर में पानी नहीं है ?

पानी तो है ।

तो फिर...?

'तो फिर यही कि बेगम किसी भी हालत में राजी नहीं होतीं । वे कहती हैं कि मैं मुसलमान हूँ, अपने घड़े का पानी पिला कर मैं उनका धर्म नहीं बिगाड़ना चाहती ।'

'लेकिन मैं तो ...।

'मैं मजबूर हूँ और मुझे अफ़सोस है आप मेरे घर से प्यासे जा रहे हैं । इसके लिये क़मायत के दिन मुझे खुदा को जबाब देना होगा ।'

क्षण भर के लिये निशिकान्त स्तम्भित चकित शून्य में ताकता रहा, फिर बोला बड़ा करारा तमाचा मारा है आपकी बेगम ने । कोई डर नहीं ! यह हमारी कमाई है पर आप मेरी ओर से उनसे कह दीजिये कि आज न सही फिर किसी दिन उन्हें मुझे अपने हाथ से अपने घड़े का पानी पीलाना ही होगा और केवल पानी ही नहीं और कुछ भी । इसके बिना न उनका भला होगा, न मेरा ।

इतना कहकर निशिकान्त बड़ी शीघ्रता से बाहर चला गया । अमजद अचरज से ठगा क्षण भर उसे देखता ही रह गया फिर एक दम ज़ोर से बोला —सकीना ! वह प्यासा ही चला गया, यह ठीक नहीं हुआ ।

सकीना तब तक पास आ गई थी, मुस्कराकर बोली — उनका प्यासा जाना फ़िज़ूल नहीं है मेरे सरताज़ ! अगर मैं उन्हें ठीक ठीक जान सकी हूं तो वह प्यास मोहब्बत के रंग को गहरा ही करेगी, इतना गहरा कि तब उसे कोई धो न सकेगा ।

लेकिन अमजद का दिमाग़ अब भी चकराया ही रहा !

———

विष्णु

क्रान्तिकारी

रामनाथ ने आज निश्चय कर लिया था, वह अब नहीं रुकेगा। वह अवश्य चला जायेगा। लेकिन रजनी ...? नाम याद आते ही उसका निश्चय डगमगाने लगा वह क्रुद्ध हो उठा – यह कैसी मोहजड़ता है ? जो जीवन भर मौत से जूझता रहा है, जो अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध जीवन की थाह लेना चाहता है, वह एक नारी के कारण अपनत्व को खोता जा रहा है। छिः, यह तो निरी कायरता है ! मानता हूं रजनी का कोई स्वार्थ नहीं है। वह सहज सहानुभूति के कारण मेरे प्रति करुण है। परन्तु करुणा और सहानुभूति क्या जीवन के गुण हैं ? ये तो जीवन के भार हैं ......

उसी समय दरवाज़े पर खड़ा-खड़ाहट हुई। उसने सहज स्वर में कहा–कौन ?

मैं...।

रजनी... ?

वह चौंक कर उठा, देखा — बढ़ई की असावधानी के कारण किवाड़ों में जो छिद्र रह गये हैं उन्हीं में से होकर धवल प्रकाश की किरणें जाने कबकी चुपचाप अन्दर आ गई हैं। बाहर शान्ति को भंग करता हुआ धीमा कोलाहल फूट पड़ा है। नीचे सैर के शौकीन बाबुओं की पदचाप बार-बार पास आकर दूर चली जाती है। उसने किवाड़ खोल दिये। बदन में हलकी-सी सिहरन दौड़ गई। रजनी ने आकर चाय का गिलास और नाश्ते की प्लेट मेज पर रख दी और लौट चली। रामनाथ ने एक बार प्लेट को देखा, फिर रजनी को। बोला — बेटी सुनो...।

जी।

मैं आज जाऊँगा।

जी, और......।

मैं अब नहीं रुक सकता।

आलोक प्रकाशन

आप रोज ही ऐसा करते हैं ।

रामनाथ सहसा कुण्ठित हो उठे, बोले — परन्तु आज रोज की बात नहीं है। आज मैं जाना चाहता हूं ।

रजनी मुड़ी — जाना चाहेंगे तो मैं रोकूँगी नहीं। कौन किसको रोक सका है? फिर भी......।

फिर भी क्या......?

यही कि यहाँ आपको क्या कष्ट है जिसको सहन करने में असमर्थ आप भाग जाने को आतुर हैं ?

अन्यमनस्क रामनाथ फिर झिझके, लेकिन दूसरे ही क्षण एक विचार उनके मस्तिष्क में उमड़ आया। वे बोले— जिन्हें तुम कष्ट कहती हो उन्हीं के बीच पल कर मैं इतना बड़ा हो गया हूं। उन्हीं का अभाव मुझे यहाँ खटकता है । लगता है, जो कुछ यहाँ है वह एक षड़यंत्र है, इतना गहरा जितना मकड़ी का जाला, परन्तु मैं मक्खी नहीं बनना चाहता ।

रजनी ने सुन लिया । सोचने लगी, इनकी बात पर हँसूं या गुस्सा करूँ ? दुनियां दुख से दूर भागती है, यह दुखों की गोद में जाने के लिए आतुर हैं । कैसा आदमी है यह...!

और वह बिना कहे नीचे लौट गई ।

रामनाथ कुर्सी पर बैठ कर यंत्र-चालित की भाँति चाय पीने लगे । पीते-पीते सोचने भी लगे । मनुष्य बहुधा जानबूझ कर नहीं सोचता । विचार आप-ही-आप आकाश के बादलों की भाँति मस्तिष्क में उमड़ आते हैं। बादल सभी सजल होते हैं। जल के बिना बादल-बादल नहीं होता । फिर भी एक धरती की छाती ठंडी करता है; दूसरा व्यर्थ ही सूरज की धूप और चाँद की चाँदनी को रोकता रहता है । इसी प्रकार विचार हैं। कुछ के कारण मनुष्य स्वयं आगे बढ़ता है और संसार भी । पर कुछ अड़ियल घोड़े की तरह गाड़ी को पीछे धकेलते रहते हैं। रामनाथ के मन में जो विचार अब उठ रहे थे वे अड़ियल घोड़े के समान थे । वह कभी का निश्चय कर चुके थे

उन्हें जाना है। परन्तु कब, यह वह नहीं जान पाते थे। जाने का प्रति क्षण आने पर देखते — किसी ने सामने आकर रास्ता रोक लिया है। रोकने वाले में शक्ति है, यह बात नहीं है। और शक्ति हो भी तो क्या वह ब्रिटिश सरकार से अधिक हो सकती है? पूरे तीस वर्ष से इस शक्तिशाली सरकार से लोहा ले रहे हैं। जीवन का कोई भी मोह, कोई भी कष्ट उन्हें त्रस्त नहीं कर सका। वह सदा नदी के प्रवाह के समान आगे बढ़े हैं। जिसने प्रवाह को रोका वह खुद ही तहस-नहस हो गया...।

लेकिन तभी न जाने किसने आकर उनके कान में फुसफुसाया— तुम जाना नहीं चाहते, नहीं तो जाने वाले को किसने रोका है?

वह चिल्ला उठे—यह गलत है। मैं जाना चाहता हूँ.........।

ठीक उसी समय निशिकान्त बाहर से लौट आए देख कर बोले— दादा, चाय नहीं पी अबतक?

रामनाथ चौंके—पी रहा हूँ, निशिकान्त।

पी रहे हो खूब, दादा। अभी से आँखें धोखा देंगी, ऐसी कल्पना भी मैं नहीं कर सकता। देखता हूँ, प्लेट में काजू और बादाम उसी तरह पड़े हैं। चाय ठण्डी होकर काली पड़ गई है।

अचरज? रामनाथ का चेहरा कुछ खिंच चला। बोले—जो कुछ तुम देख रहे हो वह ठीक है। मुझे मेवा खाने की आदत नहीं है।

तब.........?

मैं यहाँ से जाना चाहता हूँ।

निशिकान्त मुस्कराया—कहाँ जायेंगे आप?

इतना बड़ा संसार क्या नष्ट हो गया है? इसी में पलकर इतना बड़ा हुआ हूँ।

संसार में सभी पलते हैं दादा, परन्तु सभी को तो पुलिस आवारागर्दी में गिरफ्तार नहीं करती।

अपने विरोधियों को सभी लांछित करना चाहते हैं; फिर यदि सरकार मेरे विद्रोह को गुण्डागिरी बताती है तो अचरज क्या है। परन्तु उनके कहने से क्या मैं

आवारा हो सकता हूँ ?

नहीं हो सकते।

तो फिर......?

फिर वही दादा, इन वर्षों में दुनियां ने कितनी प्रगति कर ली है, यह आप भूल जाते हैं।

विद्रूप से रामनाथ मुस्कराए—प्रगति ? जिसने लोहार के घन बजाए हैं, वह सुनार की खट-खट को प्रगति कैसे मान सकता है ? मुझे राजनीतिक पार्टीबाजियों में विश्वास नहीं है। राजनीति का आरम्भ आज़ादी के बाद होता है। गुलामों की एक ही पार्टी है 'विद्रोही'। एक ही धर्म है 'बगावत'। मैं क्रान्ति चाहता हूँ, और क्रान्ति रक्त माँगती है, सिद्धान्त नहीं......।—कहते-कहते रामनाथ तीव्र होने लगे। उनकी आँखें आरक्त हो गईं। नसों में रक्त का संचार हो आया। उन्होंने तीव्रता से कहा— निशिकान्त, मैं आज अवश्य जाऊँगा।

निशिकान्त ने धीरे से कहा—आज ही जाइएगा।

हाँ, आज ही।

कहाँ का टिकट लाऊँ ?

टिकट ? मैं टिकट नहीं ले सकता। मेरे पास पैसा नहीं है। मैं पैदल जाऊँगा।

निशिकान्त ने गम्भीर होकर कहा—दादा। आप तूफ़ान की तरह सोचते हैं, परन्तु तूफ़ान नाश का प्रतीक है, निर्माण का नहीं।

ठीक है। मैं नाश चाहता हूँ। निर्माण नाश के बाद होता है, पहले नहीं।

निशिकान्त ने फिर कुछ नहीं कहा। कहे भी क्या ? जहाँ विचारों में विषमता है वहाँ तर्क है, और तर्क का कोई अन्त नहीं होता। और फिर न जाने क्यों इस व्यक्ति से तर्क करते उन्हें दुख होता है।

रजनी की हालत और भी विचित्र है और उसका कारण है।

सात दिन पहले की बात है।

रात गहरी होती आ रही थी और रजनी निशिकान्त की बाट देखती रसोईघर

में बैठी थी। तभी पैरों की चाप उसने सुनी। सोचा, वह लौट आए हैं। पर यह क्या? वह अकेले नहीं जान पड़ते। सोचने लगी, इतनी रात को कौन आया? तभी निशिकान्त ने आकर कहा— रजनी! खाना रखा है क्या?

नहीं तो, क्यों?

मेरे साथ एक आदमी है।

बना दूँ......?

हाँ, हाँ, बना दो! बेचारे भूखे हैं।

अभी बनाती हूँ, जी।

और खाना खिलाते समय उस आदमी को देख कर रजनी चौंक उठी— ऐसे खाता है जैसे कभी इन्सानों में नहीं रहा। कपड़े फटे हुए हैं। आँखों से वहशीपन टपकता है। बोलता है तो मानो लड़ता हो।

कौन है यह?—रजनी ने एकान्त पाकर निशिकान्त से पूछा।

एक क्रान्तिकारी।

कांग्रेसी?

नहीं, रजनी! कांग्रेसी नहीं है। बहुत पुराना विद्रोही है। तीस वर्ष से लगभग जेल में ही रह रहा है।

रजनी काँप उठी—तीस वर्ष, जेल में!

हां रजनी! सरकार छोड़ना नहीं चाहती। एक बार भाग कर विदेश घूम आया है। फिर पकड़ा गया। काँग्रेस-राज्य के समय छूट गया था, परन्तु उसके समाप्त होते ही फिर जेल में बुला लिया गया।

रजनी करुणा से भर उठी—बेचारे के घरवाले क्या कहते होंगे।

निशिकान्त मुस्कराया—यही अच्छा है, उसके घरवाले नहीं हैं।

नहीं हैं— क्या कहते हो? आखिर माँ, बाप, स्त्री........?

ना रजनी, कोई भी नहीं है। पहली बार जब उसने बगावत की तो केवल बीस वर्ष का था। पिता एक सरकारी दफ्तर में हेडक्लर्क थे। सुना तो बेटे को त्याग दिया।

आजकल के से दिन नहीं थे। बगावत का नाम मौत था। हाँ, मा बहुत रोई-चिल्लाई। समझाया। एक बार पकड़ कर घर भी ले गई। पर यह मौका पाकर फिर निकल भागे। सुना, उसके बाद मा-बाप से कहा-सुनी हो गई। माँ ने अनशन करके प्राण त्याग दिये।

हाय……!

और मा के प्राण-त्याग की बात सुनकर ये अत्यन्त प्रसन्न हुए; इन्हें मुक्ति मिली।

रजनी नारी थी। छाती में दरार पैदा हो गई। उसी से होकर करुणा और सहानुभूति का अजस्र प्रवाह बहने लगा। रात को सोने के लिए उसने नया बिछौना, नई चादर, नया तकिया निकाला। ऐसे बिछाने लगी जैसे अपने प्यारे बच्चे को सुलाना चाहती हो। अभी उसकी गोद भरी नहीं थी, पर अनजाने में अज्ञात शिशु उसकी छाती को घेरे पड़ा था। उसी में आकर अनायास ही इस बूढ़े बालक ने अपना घर बनाना शुरू कर दिया तो उसे तनिक भी दुख नहीं हुआ। उलटे वह एक अज्ञात गौरव से भर उठी। उसने अपने पति से कहा— देश के लिए इन्होंने सब-कुछ त्याग दिया। ऐसे ही तपस्वियों के बल पर भारत आज़ाद होगा।

निशिकान्त बोले—सो तो है ही।

पर ये अब जायंगे कहां?

कुछ पता नहीं।

आपको कैसे मिले?

शायद कहीं मेरा नाम सुना होगा। पूछते-पूछते चले आये।

और कोई नहीं जानते इन्हें?

निशिकान्त फिर मुस्कराये—दुनियां सदा ऊँचा सुनती है; रजनी! जो शोर नहीं मचा सकते, उनकी बात वह नहीं सुन पाती। और तुम जानती हो, शोर मचाना भी एक कला है, जो इनको नहीं आती।

ठीक है जी। जो चुपचाप काम करते हैं उन्हें कोई नहीं पूछता।

विष्णु

पर रजनी, इनके साथ एक बात और है। सदा जेल में रहे हैं। जनता से कभी वास्ता नहीं पड़ा। इस बीच संसार कहीं-से-कहीं पहुँच गया। इनके विचार, साधन सभी पुराने हो गये हैं। दुनियां उन्हें भूल गई है। इसलिए भी इनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता……।

रजनी को नींद आ रही थी। सुनते-सुनते वह सो गई। परन्तु अचानक ही जिस व्यक्ति ने उसके वात्सल्य को जगा दिया था वह स्वपन में भी उसका पीछा न छोड़ सका। देर तक उसी को लेकर उसका मन खिलवाड़ करता रहा। इसी बीच में अचानक उसकी आँख खुल गई देखा, चारों ओर अन्धकार है— सन्नाटा है। केवल निशिकान्त कभी-कभी कुनमुन-कुनमुन कर उठता है। कभी-कभी दूर कुत्ते भूंक उठते हैं, परन्तु यह कैसा शब्द है ? कोई धीरे-धीरे रह-रह कर सुबक उठता है। वह भय से कांपने लगी— कौन रोता है ऐसे...पर शब्द दूर नहीं था। शान्त होकर सुना, बराबर के कमरे में... बराबर के कमरे में तो वे सोये हैं। तो क्या...? वह उठी, शीघ्रता से निशिकान्त को झकझोरा—सुनिये, सुनिये जी।

निशिकान्त नींद में गुर्राये—क्या है ?

अजी, सुनिये तो...।

चौंक कर उठा। अँधेरे में आंखें फाड़कर बोला—कौन ?

मैं......।

रजनी ? क्यों ?

अजी वह रो रहे हैं।

रो रहे हैं ? कौन ?

वह...।

रामनाथ बाबू ?

जी।

निशिकान्त की नींद दूर हो गई। लालटेन जलाकर उसने पूछा—क्या बात है ?

रजनी बोली—कुछ पता नहीं। शायद बीमार हों।

तो, देखूँ जाकर ?

हाँ, देखना तो चाहिए ?

निशिकान्त उठा, किवाड़ खोले। रोने का स्वर अब भी आ रहा था। क्षण-क्षण में कोई सुबक उठता था। अचरज से भरकर निशिकान्त कुछ देर उसी तरह खड़ा रहा, फिर उसने साहस करके किवाड़ थपथपाये......।

अन्दर एकदम शान्ति छा गई।

रामनाथ बाबू......?

कोई नहीं बोला।

रामनाथ बाबू......?

अब वह बोले—जी ! स्वर संयत था। किवाड़ खोलकर पूछा—क्या बात है ?

निशिकान्त झिझका। फिर बोला—सोते-सोते वह चौंक पड़ी। ऐसा मालूम हुआ, कोई रोता है।

रोता है ? कौन ?

यही तो देखना है।

अंधेरे में क्या भाव चेहरे पर आये, कुछ पता नहीं लगा। लेकिन कहा उन्होंने यही—शायद कोई पास के मकान में रो रहा हो !

शायद, पर उसे ऐसा भ्रम हुआ जैसे आप......।

वह जोर से हँस पड़े—मैं ? मैं क्यों रोऊँगा निशिकान्त बाबू ? मैं तो गहरी नींद में सो रहा था। आपकी पत्नी को भ्रम हुआ है।

शायद,—वह हतबुद्धि से लौटने लगे,—क्षमा करिये, आपको व्यर्थ जगाया।

वह उसी तरह बोले—कोई बात नहीं है। केवल गलतफहमी के कारण ही ऐसा हुआ है।

और बात वहीं समाप्त हो गई। निशिकान्त ने सोचा— अपने को छिपाने की कला में आदमी कितना अभ्यस्त हो गया है।

रजनी ने सोचा—ये लोग भी कितना झूठ बोलते हैं। छल और झूठ। हाय

रे भाग्य ! आदमी इनसे कहीं भी नहीं बच सका। स्वर्ग में इनका अभाव नहीं है। 'मेरी पीड़ा प्रकट न हो'—यह यत्न करने में छल और झूठ अनायास ही पुण्यात्मा के अस्त्र बन जाते हैं। कैसी घोर विडम्बना है, पर रजनी अब भी सोचती है— यह रोये क्यों ?

परन्तु इससे भी बढ़ कर अचरज रजनी को उस दिन हुआ। जब रामनाथ बाबू ने स्वयं स्वीकार किया वह रोये थे। तबतक उनका अजनबीपन दूर हो चुका था और इस दम्पति के अपनत्व के सामने वह झुकते जा रहे थे। वह तब धूप में बैठे रजनी को अपने बीते जीवन के संस्मरण सुनाने में लगे थे। अवस्था की दृष्टि से रजनी को बेटी कहते थे। मा की बात सुनाते-सुनाते अचानक बीच में बोल उठे— उस रात बेटी, मैं सचमुच रोया था।

रजनी बोली— मैं जानती हूँ।

सोचा होगा, कैसे पागल हैं ?

पागल नहीं, झूठा।

रामनाथ खुल कर हँसे—सचमुच मैंने झूठ बोला था।

क्यों ?

क्योंकि मैं अपनी कायरता स्वीकार नहीं करना चाहता था।

कायरता………?

हाँ, रोनेवाले कायर होते हैं।

पर आप रोये क्यों थे ?

मा की याद आ गई थी, बेटी। बचपन में वह इसी तरह मेरे लिये साफ बिस्तर बिछाया करती थी। चादर पर एक भी दाग लग जाता था तो मैं उसे फेंक देता था। याद नहीं पड़ता कभी तकिये का एक गिलाफ दूसरी रात मेरे तकिये पर रहा हो। तीस वर्ष पहले के वे दिन उस रात मेरे सामने आ खड़े हुए। ऐसा लगा मानों मा ने बिस्तर बिछा कर पुकारा हो—रामू ! सोयेगा नहीं रे ? सबेरे कालेज जाना होगा……। उस जमाने की बात। कालेज जाना श्रीवृद्धि और ऐश्वर्य का मुक्त द्वार था। यही आशा

लगा कर मेरे मा-बाप ने मुझे कालेज भेजा था। इसी आशा पर उनका प्यार दुलार मुक्त हो कर बह रहा था। पर हाय रे भाग्य! एक दिन चुपके से आकर बेमाता ने मेरे मा-बाप का स्वप्न भंग कर दिया। उनका बेटा इण्डियन-सिविल-सरविस में न जाकर भारत-मा की सेवा में जा पहुँचा। शब्द के अर्थ में कोई भेद नहीं था। भेद था केवल अर्थ की प्राप्ति में। इस प्राप्ति के प्रश्न को लेकर मेरे जीवन की दिशा पलट गई। पिता ने देखा, क्रुद्ध हो उठे। बोले— तूने मेरी नाक काटी है, मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहता।

मैंने कहा—पिताजी, आपकी नाक जहां है वहीं रहेगी, पर अपना मुंह दिखाने मैं आपके घर नहीं आऊँगा।

मा कांप उठी—क्या कहता है तू? पिता की प्रतिष्ठा धूल में मिलाना ही क्या आजकल की सन्तान का पेशा है?

मैंने कहा–मा! पिता की प्रतिष्ठा धूल में मिलाकर भी मैं देश की प्रतिष्ठा बचा सका तो सौदा सस्ता ही होगा।

मा नहीं समझी, रो पड़ी। न जाने हिन्दुस्तानी मा के ये आँसू कब रुकेंगे? जिस दिन रुकेंगे उसी दिन भारत आज़ाद होगा, उससे पहले नहीं। उस रात मैंने वे आँसू फिर देखे। लक्ष्मण की रेखा के समान इन्हीं आँसुओं की लाग देकर माँ मुझे बाँधना चाहती थी, पर बाँध न सकी। रावण का नाश जो होना था! पर बेटी, उस दिन और आज के दिन में एक अन्तर है। तब मेरी धमनियों का रक्त, जितना गरम था आज उतना नहीं है! उत्साह होकर भी उसका आधार-स्तम्भ ढीला पड़ गया है। न जाने क्यों अपने को निर्बल महसूस करता हूँ? जेल लाँघ कर मैंने देश छाना है। वर्षों अधिकारियों के लिए भूत बन कर उनकी नींद हराम की है। पर आज………?

सहसा रामनाथ उद्विग्न हो उठे। आँखें आरक्त हो आईं। मुख तमतमा गया–नहीं। मैं अब भी सशक्त हूँ। मेरा ध्येय मुझे भूला नहीं है। मैं मोह-जाल में फँसकर कायर नहीं बन सकता……।

रजनी चौंकी, कुछ दुःखी भी हुई। बोली — आपको दुःख हुआ, क्षमा कर

दीजिए। आप देश के गौरव हैं, भले ही आपका नाम कोई न जानता हो। आपको रोक रखने की हम लोगों की कतई इच्छा नहीं है।

रामनाथ को अपनी गलती महसूस हुई, लज्जित हो उठे। कहा— नहीं बेटी! गलती मेरी है। सड़क का भिखारी ऐश्वर्य की गोद में रोने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। आशा से अधिक जिसे मिल जाता है वह मस्तिष्क का संतुलन खो बैठता है। जो स्नेह स्वप्न बन गया था वही जब साकार होकर सामने आ गया तो मैं कायर बन चला। पर बेटी, मैं अब जाना चाहता हूँ।

रजनी बोली—विश्वास रखिये, हम आपको बांधना नहीं चाहते। परन्तु इस प्रकार भी क्या जीवन बिताया जा सकता है? अराजकता के दिन अब नहीं हैं। कुछ दिन हम लोगों के पास रहिए। देश आपका है। आप किसी पर भार बनने की बात क्यों सोचते हैं?

रामनाथ द्रवित होने लगे, कहा—रजनी बेटी। तुम्हें देखकर मा की याद आ जाती है। ऐसा लगता है, तुम्हारे रूप में मा जन्म लेकर फिर से मेरी देख-भाल करने आ गई है। ऐसा नहीं होता तो कैसे उस रात मैं निशिकान्त को ढूँढ पाता? उनके लेख पढ़े थे। लगा, आदमी विस्तृत है, इसलिए चला आया। देखता हूँ, उस विस्तृत आकाश के अतिरिक्त यहां विशाल धरती भी है। इसी आकाश और धरती की मिलन-छाया के नीचे जीवन-सन्ध्या के कुछ दिन बिता सकने का लोभ मुझे बार-बार हो आता है।

रजनी मुस्कराई—तो उस लोभ को त्यागिये नहीं। कुछ दिन यहाँ जरूर रहिए।

रामनाथ फिर असमंजस में पड़ गये। कुछ क्षण सोचते रहे, फिर बोले—देखता हूँ, यह लोभ त्यागा नहीं जा सकेगा। मैं भाग नहीं सकूँगा……।

रजनी गद्‌गद्‌ हो उठी, जैसे मनचाहा वर मिला। निशिकान्त के लौटते ही उसने कहा—

सुनिये, ये अब यहीं रहेंगे।

सच ?

हाँ। आज उन्होंने पहली बार स्वीकार किया है वह रहना चाहते हैं।

निशिकान्त प्रसन्न हुआ, बोला—यह शुभ है रजनी ! कुछ दिन यहाँ टिक कर रहेंगे तो जीवन पर विचार करने का अवसर मिलेगा।

जी। पर आप उनके लिए कपड़ों का प्रबन्ध कर दीजिये। इनके पास कुछ नहीं है। और भी जरूरी चीजें......।

जरूर करूंगा। आते समय भंडार से कपड़ा लेता आऊँगा।

और देखिये, यह पढ़े-लिखे आदमी हैं, चाहें तो ट्यूशन कर सकते हैं। स्वाभिमानी आदमी दूसरे का अन्न खाना ठीक नहीं समझते। इनको ऐसा महसूस नहीं होने देना चाहिये कि यह हम लोगों पर निर्भर हैं।

निशिकान्त प्रभावित होकर बोले—रजनी, बात तुमने पते की कही है। मैं अवश्य इसका भी प्रबन्ध करूंगा।

और सचमुच अगले दिन निशिकान्त जब दफ़्तर से लौटे तो बहुत-सा कपड़ा और कुछ अन्य जरूरी सामान बगल में दाबे हुए थे। आकर बोले— लो भाई, दादा का सामान ले आया हूँ। कहाँ हैं वह ? दरजी भी आ गया है।

रजनी देखकर हँसी—ले आये, बड़ा अच्छा किया ! दादा ऊपर बैठे होंगे। आज तमाम दिन बड़े प्रसन्न रहे। कहते थे...।

निशिकान्त ऊपर चले गये। रजनी सामान संभालने लगी। लेकिन उसी क्षण ऊपर से निशिकान्त ने पुकारा — अरे भाई वह यहाँ नहीं हैं।

रजनी चौंकी—नहीं हैं ? वहीं तो थे।

बाज़ार तो नहीं गये ?

मुझसे तो नहीं कहा। मैं जब आई थी तो पढ़ रहे थे। और कहती कहती वह भी ऊपर चली गई। देखा — कमरा सूना पड़ा है। किताब उलटी रखी है। सब सामान यथास्थान है, केवल उनके पहनने की धोती अरगनी पर नहीं है।

मन कैसा चोर है ? क्षण भर में सब-कुछ देख डाला। बोली— कहाँ गये ?

बिना कहे तो वह हिलते भी नहीं।

तुमने सुना न हो ।

शायद ! तो अभी आ जायेंगे, आप दरजी से कह दीजिये कि...। तभी उसकी दृष्टि पलंग पर पड़ी। तकिये के नीचे एक कागज रखा था । झपट कर उसे उठा लिया। रामनाथ ने उसमें लिखा था —

तुम लोगों ने मुझ पर जो अपने निष्पाप हृदय का स्नेह उँडेला है उसका बदला सहस्र जन्म लेने पर भी चुकाना असम्भव है। सोचा था जीवन के अन्तिम दिन तुम लोगों के स्नेह-वट की छाया में बिता दूं, पर मनुष्य का सोचना क्या स्वतंत्र है ? वन्दिनी मा की मुक्ति के लिए जन्मदात्री का वध मैं कर चुका हूँ। सोचता हूँ, किसी दिन तुम लोगों के प्रति भी मुझे कृतघ्न न बनना पड़े। इसीलिए आज जा रहा हूँ । विश्वास रखिये, मैं जीवन में विश्वास रखता हूँ । मरते दम तक जीऊंगा । हाँ, एक बात तुमसे कहता हूँ। प्रेम का जो स्फटिक सोता तुम लोगों के हृदय में बहता है उसे कभी न सूखने देना। सारा संसार उसी का प्यासा है। मैं भाग्यशाली था जो उस सोते का पानी पी सका। अकेला ही सारा पी जाऊं— इतना स्वार्थी मैं नहीं होना चाहता।

तुम लोगों का

रामनाथ

पढ़ लिया तो कागज हाथ से छूट कर गिर पड़ा — बस

———

यह क्रम

●

उस दिन जब निशिकान्त दफ़्तर से लौटा तो बहुत प्रसन्न था। रास्ते में एक पुराने मित्र मिल गये थे। देखते ही बोले — हलो निशिकान्त !

निशिकान्त मुस्कराया—अहा, रमेश ! बहुत दिनों में देखा। प्रसन्न हो न ?

'बहुत प्रसन्न ! भई ! इस मास के 'नव-भारत' में तुम्हारी कहानी देखी।'

निशिकान्त उत्सुक हुआ। पूछा — कैसी लगी ?

'एकदम शानदार, बहुत शानदार।'

गदगद होकर उसने कहा — शुक्रिया !

रमेश बोला — भई खूब पकड़ है तुम्हारी। जो तुमने लिखा है वे सब बातें हम दिन-रात देखा करते हैं परन्तु उनका वह रूप जो तुमने प्रस्तुत किया है कभी हमारे सामने नहीं आता। बहुत गहरी पकड़ है तुम्हारी ! निशिकान्त का मन फूल उठा लेकिन जैसे ही वह घर पहुँचा तो उसकी प्रसन्नता झुंझलाहट में पलट गई। जीने पर चढ़ते-चढ़ते उसने सुना, घर में एक गहरा शोर व्यापा है। उस शोर में खीज, क्रोध झुंझलाहट भरी पड़ी है। अनायास ही उसके मुँह से निकला — कैसे कम्बख्त लोग हैं ? हर वक्त शोर मचाते रहते हैं। घर न हुआ कंजरखाना हो गया और तुर्रा यह है कि सब पढ़े-लिखे लोग हैं.........। वह ऊपर आगया। उसने देखा— सब घर वालों ने उसकी छोटी लड़की को घेर रक्खा है। वे सब उसे ताड़ रहे हैं। सब एक साथ बोलते हैं। बालिका भयातुर आँखों में आसू भरे, मुँह फुलाये बुत की तरह अडिग खड़ी है।

उसने कहा — क्या शोर मचाया है ?

उसे देख कर सब सहसा सहम उठे। मा ने क्षण भर रुक कर धीरे से कहा— इसने चोरी की है ?

विष्णु

'किसकी चोरी ?'

'किसकी क्या बेटे ! कल मैंने एक रुपया भुनाया था। चार आने का दूध, तीन आने का दही, दो आने ......'

वह खीज उठा । बीच में टोक कर बोला — मतलब की बात कहो, मा !

'हाँ ! वही कहती हूँ । कुल तीन आने बचे थे। वे मैंने बहू को दे दिये । मैं होती तो सब मेरे सिर हो जाते — कहीं और रख दिये होंगे । वह तो बहू थी; उसने मेरे सामने.........'

निशिकान्त की खीज क्रोध में पलट गई। झल्ला कर बोला—मा ! तुम सदा दास्तान सुनानी शुरु कर देती हो। बात क्या है ? आखिर उसने कितने पैसे चुराये ।

'एक आना !'

'तुमने देखा ।'

'हाँ, सरिता ने देखा ।'

'कहाँ है सरिता ?'

सरिता दबी दबी एक कोने में खड़ी थी। नाम सुन कर आगे आगई । निशिकान्त ने स्वर को यथाशक्ति कोमल बना कर कहा – क्यों सरिता, तुमने देखा ?

सरिता ने सहमे-सहमे गरदन हिलाकर स्वीकृति दी - बालिका ने तब आँखें उठा कर एक बार सरिता को देखा और फ़िर पिता को । उसी क्षण निशिकान्त के नयन आरक्त हो आये, चहरे पर क्रोध गहरा हो गया । उसने बालिका का हाथ जोर से पकड़ कर खींचा, इतने जोर से कि बालिका चीख उठी । मा ने अब बालिका का पक्ष लिया, अरे नहीं बेटा ! मारने से क्या होता है ?

'तुम यहाँ से जाओ मा ! तुम सब..............।'

वे सब दूसरे कमरे में चले गये। निशिकान्त ने बालिका को दोनों हाथों से पकड़ कर अपने सामने खड़ा किया और तीव्र स्वर में पूछा—तुमने पैसे उठाये हैं ?

बालिका चुप ।

'बोलो ।'

बालिका उसी तरह स्थिर ।

'नहीं बोलती ! मार डालूँगा जान से ।'

बालिका पूर्ववत मौन ।

निशिकान्त ने ज़ोर से उसे हिलाया फिर तड़ाक से गाल पर एक चपत दे मारा । बालिका तिलमिला उठी । उसके गालों पर रक्त चमकने लगा । कई क्षण तक उसकी साँस ऊपर की ऊपर, नीचे की नीचे, रुकी रही । और फिर वह बेतहाशा रोने लगी । स्वयं निशिकान्त का अन्तर व्याकुल हो उठा लेकिन बाहिर उसी तरह दृढ़, कठोर। उसने चिल्ला कर कहा—ख़बरदार जो रोई ।

लेकिन बालिका का चीत्कार कम न हुआ । चपत फिर उठा । बालिका सहमी, मुँह बन्द करके उसने स्वर को रोका लेकिन सुबकियाँ कोशिश करने पर भी नहीं रुकीं ।

वह फिर चिल्लाया—चुप ! एकदम चुप !

बालिका ने फिर कोशिश की..........।

'तुमने चोरी की थी ?'

बालिका अब भी नहीं बोली । उसने गाल पर हाथ रखा हुआ था। वह सुबक रही थी, उसकी आंखों से भय बिखरा पड़ता था ।

निशिकान्त ने तीव्र होकर कहा—नहीं सुनती तू । ऊपर देख । बालिका सहमी, उसने ऊपर देखा, आँखों से आँखें मिलीं मानो बिजली कौंधी, मानो भूचाल का गहरा धक्का पृथ्वी को कँपता हुआ सर्र से निकल गया । निशिकान्त चौंक उठा—यह क्या...?

उसने फिर देखा, फिर-फिर देखा—वही आरक्त चेहरा, वही सजल भयपूरित आँखें, वही अनबूझ दृष्टि, वही कम्पित गात......उसके दिमाग पर किसी ने दे मारा । वह मिमिया कर रह गया ।......उसके सामने उसका अपना मुख था । पच्चीस वर्ष पहिले वह ऐसा ही लगता था, बिल्कुल ऐसा । एक दिन इसी की तरह वह भी काँप रहा था, उसकी भी आँखें आँसुओं से भरी थी, उसका भी चेहरा तमतमा रहा था—। उसने भी चोरी की थी ।

विष्णु

निशिकान्त फुसफुसाया—मैंने भी चोरी की थी। उसका हाथ ढीला पड़ा उसने फिर अपनी बेटी को देखा और दूसरे क्षण दौड़ते घोड़े की तरह, शोर मचाती घटनाओं की रेल उसके दिमाग के शैलों से टकराती-उलझती निकल गई। वह तब ६ वर्ष का था। उसने अपनी दादी की डिबिया से रुपये निकाल कर बहुत सी चीज़ें ख़रीद ली थीं—मसलन, किताबें, सलेट, कलम, पैन्सिल, खेलने के लिए ताश, सीटी; खाने के लिए कलाकन्द पेड़े। और वह अकेला नहीं था, उसके कई सहपाठी उसके साथ थे और वह चौंका.........उस डांके में उसके मास्टर का भी हिस्सा था। वास्तव में मास्टर को भेंट करने के लिए उसने चोरी की थी। यह बात दूसरी थी कि उन्हें एक रुपया देकर उसके पास चार और बच रहे थे। आख़िर वह चोरी पकड़ गई चोरी कभी नहीं छिपती। और जब पकड़ गई तो उस पर बेतहाशा मार पड़ी। मा ने चिनचिना कर कहा—जी करता है मरे की छाती पर चढ़कर खून पी जाऊँ। मरे ने मेरे दूध को लजाया है।

कुल लजावा कहीं का। इतना है तो यह हाल है......। बाप ने आँखें तरेर कर दाँत मींच कर मुक्का उठाया और चाचा ने मारे तमाचे के मुँह लाल कर दिया—तूने चोरी की है......? क्यों की है......? फिर करेगा चोरी......? किसी के भुलावे में मत रहना......हड्डी-पसली तोड़ डालूँगा......। लेकिन एक बूढ़ी पड़ौसिन ने मुँह बिचकाकर कहा—क्यों मारे डालते हो लौंडे को, आख़िर इसके बाप ने भी तो चोरी की थी।

और चाचा ने भी......।

बिजली फिर कौंधी। उसे याद आया उसी सन्ध्या को जब वह खूब पिट चुका था। उसका चाचा हँसा और बोला—मैं जब छोटा था तो लाला की दूकान से दो पैसे उड़ा लाया था।

मा भी हँसी—दो पैसे क्या! न जाने कितने कुएं खोदे थे तूने? निशिकान्त ने ज़ोर से गरदन को झटका दिया। उसके चेहरे पर कालख पुतने लगी—मेरे बाप चाचा ने चोरी की थी, मैंने चोरी की थी और आज मेरी बेटी ने की है। मेरा बाप पिटा था, मैं पिटा था, और मेरी बेटी पिटती है.........।

छी, छी–वह काँपा–कैसा दूषित क्रम है ! यह मेरी बेटी है, मैं अपने बाप का बेटा था और मेरा बाप अपने बाप का......यह अटूट और अनन्त परम्परा है–चोरी की परम्परा। बेटी ने मुझसे चोरी सीखी, मैंने अपने बाप से, बाप ने अपने बाप से और इसी तरह हर किसी ने अपने पहले हर किसी से यह गुण प्राप्त किया। लेकिन दण्ड···।

निशिकान्त ने अब अपनी बेटी को बिल्कुल मुक्त कर दिया। उसे फिर एक पढ़ी हुई बात याद आ गई।

एक पिता अपने नवजात पुत्र को लेकर एक महापुरुष के पास पहुँचे। परम श्रद्धा से शिशु को उन्होंने उनके चरणों में लिटा दिया। बोले—परमपूज्य ! बालक को आशीर्वाद दीजिये यह मनुष्य बने !

महापुरुष मुस्कराये, बोले— अपने को मनुष्य बनाओ; बालक स्वयं मनुष्य बनेगा।

और यही बातें सोचकर निशिकान्त का मन ग्लानि से भर उठा। वह फुसफुसाया—मेरी बेटी ने चोरी की है यह मेरा अपराध है। दण्ड मुझे मिलना चाहिये, इसे नहीं।

अब उसके मन में जो क्रोध था वह दूर हो गया और स्नेह उमड़ पड़ा—ऐसा स्नेह जो क्षमा से पूरित था। उसने बेटी को छाती से चिपका लिया। कई क्षण चिपकाये रहा। मन जब बहुत भीग चुका तो जेब से बटुआ निकाला। उसमें जो भी पैसे थे उन्हें पलंग पर उलट कर बोला–बोलो बेटे ! क्या चाहिये ?

बालिका ने गरदन उठा कर कौतूहलभरे नयनों से अपने पिता को देखा, देखती रही। निशिकान्त ने उसी स्नेह से कहा—बोले बेटे·········।

बालिका का भय बरबस दूर होने लगा। यद्यपि आशंका अभी भी बनी हुई थी। तो भी वह मुस्कराई। निशिकान्त हँसा—अब ठीक है मेरी बेटी ! यह पैसे तुम्हारे हैं। उठा लो।

बालिका हँस पड़ी और जल्दी से जल्दी पैसों को बटोरने लगी। बीच में रुक कर एक दो बार सहमी दृष्टि फिर पिता को देखा। कहीं······ ।

विष्णु

लेकिन निशिकान्त का स्नेह और भी गाढ़ा और गहरा हो रहा था। उसके नेत्र सजल हो उठे थे! उसके मुख पर माधुर्य झलकने लगा था। उसने कहा—मेरी बेटी! जब भी तुम्हें पैसों की ज़रूरत हो तो मुझसे कहो— मैं तुम्हें पैसे दूँगा।

आखिर अब बालिका की बानी खुली। उसने मुस्करा कर कहा—अच्छा पिता जी!

———

अरुणोदय

●

जैसा कि सदा होता था, निशिकान्त के तीव्र स्वर का उन पर तनिक भी असर नहीं हुआ। उन्होंने बड़ी शान्ति से फ़ाइल उलटते हुए कहा—'बाबू निशिकान्त, आप युवक हैं, आपके लहू में गरमी है, किसी दिन मैं भी युवक था, मेरे लहू में भी गरमी थी। सच कहता हूँ, गोरे अफ़सर का अत्याचार देखकर मैं कांप उठता था। जी में आता था कि उसके हाथ से कोड़ा छीन कर उसे ही पीटना शुरू कर दूं। वह सलाम का भूखा था सड़क पर चलते समय जो भी उसे सलाम न करता उसी पर वह बेरहमी से कोड़े बरसाने लगता। यही देख और सुनकर मैं क्रोध से भर उठता था। मैं चाहता तो उसे पीट सकता था, मुझ में शक्ति थी, परन्तु... परन्तु बाबू निशिकान्त ! मैं ऐसा करता, तो क्या तुमसे बातें करता होता ? मुझे जेल होती, सम्भवतः मार दिया जाता, और मेरे बच्चे, मेरी स्त्री, मेरा सारा परिवार दर-दर का भिखारी होता......।'

निशिकान्त ने दाँत पीस लिये, कहा कुछ नहीं। वे ही कहते रहे। वे लगभग पचास वर्ष के थे, परन्तु बाल अभी तक काले थे, आंखें चमकती थीं। इसी दफ़्तर में अपनी नौकरी के पच्चीस वर्ष पूरे कर चुके थे। उनका नाम था बाबू हरिचन्द। हँसमुख, प्रेमी और मिलनसार। कभी क्रोध नहीं आता था और जिन्हें क्रोध आता था उनको वे ऐसी करुण दृष्टि से देखते कि क्रोधी पानी-पानी हो उठता था। समय की उन्हें विशेष चिन्ता नहीं थी। सबसे पहिले आते और लौटते तो रात पड़ जाती। सदा यही कहते, गुलामी पाप है, पीस देती है परन्तु क्या करें, भगवान की यही इच्छा है। वह चाहेगा तभी कुछ होगा। अब भी उन्होंने कहा, 'धीरे-धीरे सब कुछ ठीक हो जावेगा। समय सब कुछ करा लेता है। आज तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई गोरा किसी हिन्दुस्तानी को गाली दे सकता है। कोड़े मारना तो दूर की बात है।'

निशिकान्त का सब्र जवाब दे रहा था, उसने तीव्रता से कहा — 'समय कुछ

विष्णु

नहीं करता, उससे कराया जाता है ।'

'हाँ; हाँ' — बाबू हरिचन्द ने कहा — 'ठीक है, कराया जाता है । भगवान सब कुछ करा लेते हैं ।'

'आह ! भगवान नहीं, आदमी कहिये, आदमी, बाबू साहब ।'

'आदमी ? आदमी ही कह लीजिये ! भगवान उसी के द्वारा सब कुछ करा लेते हैं। वह भगवान के हाथ का यन्त्र है.........।'

'यन्त्र ... !' निशिकान्त का मन घुटने लगा, धुआं जैसे छाती से उठकर मस्तिष्क में भर चला हो, परन्तु वह क्या कहे और किससे कहे ! इसीलिये मन मार कर वह भी फ़ाइलों में उलझ चला, लेकिन कहते हैं 'शक्कर ख़ोरे को शक्कर और मूंजी को टक्कर' सब जगह मिल जाती है । उसने फाइल उठायी और बाबू हरिचन्द के पास आकर बोला — 'आप समय की बात कह रहे थे, मुझे बताइये मैं क्या करूँ ?'

परम शान्त मुद्रा में वे मुस्कराये — 'क्या बात है ?'

'क्या बात होती, वहीं मँगला चपरासी की ग्रेचुइटीका केस है । तीन वर्ष से बड़े दफ़्तर में पड़ा हुआ है । और अब वे कहते हैं कि इसे समाप्त कर दीजिये ।'

'यह केस समाप्त हो चुका है ।'

'क्यों ?'

'क्योंकि बड़े दफ्तर के बाबुओं की ऐसी ही इच्छा थी ।'

निशिकान्त को फिर तैश आने लगा। उसने कहा—'मैं जानना चाहता हूँ कि उनकी इच्छा का इतना मूल्य क्यों है ?'

बाबू हरिचन्द फिर मुस्कराये और बोले — 'बाबू निशिकान्त, बड़े दफ़्तर के बाबू बड़े हैं। वे हमारे अन्नदाता हैं, हमारे भाग्य के निर्णायक हैं, उनकी क़लम क्षण भर में हमारी उन्नति को अवनति में पलट सकती है । तुम कारण की बात कहोगे परन्तु भैया ! कारण ढूंढ़ निकालना कोई कठिन काम नहीं । [सहसा धीमा स्वर कर लेते हैं।] और निशिकान्त, अब तुम्हारा मामला है । वे चाहें तो तुम्हें सीनियर बना दें, चाहे तो उस्मान को। सीनियर होते ही नया ग्रेड मिलता है, वेतन बढ़ता है ।

ऐसी अवस्था में कौन मूर्ख होगा जो उनका विरोध करके अपने उज्वल भविष्य का नाश करेगा।'

निशिकान्त ने लापरवाही से कहा—'मुझे अपने भविष्य की चिन्ता नहीं है। उसके लिये मैं अपने ऊपर विश्वास करता हूँ, दूसरे पर नहीं।'

'तब तुम मूर्ख हो,' जवाब मिला।

'हो सकता है'—निशिकान्त ने कहा— 'परन्तु इस केस को समाप्त करने से एक गरीब परिवार की आशाओं पर तुषारपात होता है। जब आप भविष्य को बिगाड़ने और सुधारने की बात कहते हैं तो क्या यह नहीं सोचते गरीब की आह में बड़ी शक्ति होती है, वह भविष्य की उज्वल रेखा को तनिक सी देर में काली कर सकती है?'

बाबू हरीचन्द ने उसी शान्ति से कहा—'लेकिन बाबू निशिकान्त, आप क्यों डरते हैं? अगर किसी के भविष्य की उज्वल रेखा काली होगी तो वह बड़े दफ्तर के बड़े बाबुओं की होगी, हमारी नहीं। सच मानो, हमें उन लोगों के भविष्य की ज़रा भी चिन्ता नहीं है।'

यह कहकर उन्होंने निशिकान्त की ओर अद्‌भुत मुद्रा से देखा। उनके मुख पर हँसी झलक आयी थी। वह हँसी जो मात्सर्य्य, व्यंग्य और विजय से पूर्ण थी, मानो कहते थे—निशिकान्त! सच मानो, बड़े दफ्तर के बड़े बाबुओं से हमें बड़ी नफ़रत है। उनके पतन से हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। इसीलिये ऐसे कारणों को रोकने की हम ज़रा भी चेष्टा नहीं करते।

निशिकान्त ने सब कुछ देखा और समझा। उसका मस्तिष्क चकराने लगा। उसे नौकरी करते हुए पन्द्रह साल बीत चुके थे परन्तु न जाने क्यों इधर वह चिन्तित और व्यग्र होता आ रहा था। ऐसी सब बातों से उसे घृणा होने लगी थी और वह इस दम घोटने वाले वातावरण से दूर, बहुत दूर भाग जाना चाहता था, लेकिन·········

बस यही 'लेकिन' उसके रास्ते का रोड़ा बनकर अटका पड़ा था। इस 'लेकिन' में आदर्श के लिये जीविका छोड़ने का प्रश्न था। उस भविष्य का प्रश्न था जहां सरकार की पेन्शन पाकर बुढ़ापे में आराम और आसाइशका जीवन बिताया जाता है, परन्तु

यह भविष्य केवल शारीरिक ही नहीं, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रताका हनन करके प्राप्त किया जाता है। मानो मनुष्य मनुष्य नहीं है। न उसमें चेतना है, न बुद्धि है। न उसकी आशाएँ हैं, न आकांक्षाएँ, बस वह केवल यन्त्र मात्र है.........

सहसा उसे याद आ गया, उसके साथी ने अभी-अभी कहा था— मनुष्य भगवान के हाथ का यन्त्र है, और भगवान जो कुछ भी चाहते हैं मनुष्य को करना पड़ता है। उसके मन ने तर्क किया— लेकिन भगवान क्या चाहते हैं इसका निर्णय कौन करता है ?

उत्तर भी स्वयं ही मस्तिष्क में आ गया। जो कुछ होता है वही भगवान चाहते हैं। यह उत्तर सोचकर उसे बड़ी भयानक हँसी आ गयी। उसने फ़ाइलों को परे सरका दिया। कुरसी पीछे हटायी और पैर मेज़पर रखकर लुढ़क गया। हाँ, तो, जो कुछ होता है वही भगवान चाहते हैं, और जो भगवान चाहते हैं वही होता है। मनुष्य तो उसके हाथ का यन्त्र है, जिधर चाहा जैसे चाहा, घुमा दिया........।

तभी छोटे बाबूने आकर कुछ कागज़ उसके सामने फेंक दिये, बोले, 'देखो।'

'क्या है ?'

'तुम्हारा केस है, और बड़े बाबूने जो कुछ लिखा है वह तुम्हारे विरोध में जाता है।'

'जाने दो, मुझे उसकी चिन्ता नहीं है।'

'लेकिन यह उसकी नीचता है। वह इस प्रकार मुसलमानों का भला बनना चाहता है।' पर यह उसकी भूल है। वे लोग इसे निकालकर दम लेंगे।

निशिकान्त सब कुछ समझ रहा था। उसने धीरे से कहा, 'मैं समझता हूँ उनका यह विश्वास है कि उस्मान मुझसे सीनियर है।'

'नहीं, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कौन सीनियर है। बात केवल बड़े दफ़्तर के रूलिंग (निर्णय) की है। ऐसी अवस्था में उसका कर्तव्य है कि वह तुम्हारा पक्ष ले।'

'क्यों ?'

' क्योंकि तुम हिन्दू हो और क्योंकि मुसलमानों ने हम लोगों पर अत्याचार करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। प्रान्तीय स्वशासन के बाद तो उन्होंने नौकरियों पर एक प्रकार से धावा बोल दिया है।'

निशिकान्त सहसा बोलते-बोलते रुक गया। वह हिन्दू है और उसके हिन्दूपन को लेकर ही ये सब बाबू उससे सहानुभूति प्रकट करने आये हैं। इसलिये कोई ऐसी बात कहना जिससे उनका मन दुखी हो ठीक न होगा।

—कि छोटे बाबू फिर बोल उठे: 'तुम लाहोर क्यों नहीं जाते?'

'लाहोर......?'

' हाँ '

निशिकान्त अब चुप नहीं रह सका! उसने दृढ़ता से कहा— 'नहीं। मैं कहीं नहीं जाऊँगा। अगर मेरा पक्ष प्रबल है तो मुझे किसी के आगे हाथ पसारने की ज़रूरत नहीं है और अगर उस्मान का पक्ष ठीक है तो उसे सीनियर बनाना ही चाहिये। मुझे इस बात का तनिक भी दुख नहीं होगा।'

छोटे बाबू कच्ची गोली नहीं खेले थे। बोले—'तुम्हें दुख नहीं होगा लेकिन हमें तो होगा। आज की दुनिया में न्याय चुपचाप बैठने से नहीं मिलता। जानते नहीं वह कितनी कोशिश कर रहा है, कितने अफ़सरों से मिल चुका है?'

'सब कुछ जानता हूँ, यहाँ तक कि उसने अपना आदमी लाहोर भेजा है।'

'तो फिर......?'

'तो फिर यही कि शायद उसे अपने पक्ष की निर्बलता का विश्वास है।'

'बेशक उसका पक्ष निर्बल है, लेकिन कोशिश करके वह उसे प्रबल बना लेगा। तुम न्यायकी बाट देखते रहना। परन्तु हम यह नहीं होने देंगे। बात केवल निशिकान्त की नहीं है, हिन्दू-मुसलमान की है।'

और इतना कह कर वे चले गये। निशिकान्त ने फिर चिट्ठियों को सँभाला। सामने डाक का ढेर लगा था। उसे सब पर टिप्पणियाँ लिखनी थीं। उसने कलम उठायी और लिखना आरम्भ कर दिया, लेकिन मस्तिष्क.........वह तो काम से दूर, बहुत दूर,

उसके भविष्य की चिन्ता में लगा था। निशिकान्त किसी भी तरह उसे शान्त न कर सका। उसने सोचा, यदि मैं सीनियर हूँ तो वे रोकते क्यों हैं? क्या मनुष्य सचमुच इतना गिर गया है कि वह स्वार्थ के लिये न्याय का गला घोंट दे? नहीं, नहीं, परमेश्वर यदि है तो ऐसा नहीं होगा। वह कभी अन्याय नहीं होने देंगे·········कि सहसा धक्का लगा–परमेश्वर! कैसी मूर्खता की बातें हैं? ईश्वर-परमेश्वर कहीं कुछ नहीं है। मनुष्य जब निर्बल था, तब ईश्वर का जन्म हुआ था। वह मनुष्य की निर्बलता की स्वीकरोक्ति मात्र है। पर आज तो मानव शक्तिशाली है। उसने प्रकृति को जीता है। उसे अब परमेश्वर की जरूरत नहीं है......।

कि तभी एक दूसरे मित्र आये और धीरे से बोले—'कुछ सुना तुमने?'

'क्या?'

'रात मस्जिद में मीटिंग हुई थी'

'किनकी?'

'उन्हीं लोगों की। डिप्टी, ओवरसियर, स्टोरकीपर सभी थे। तुम्हारे हमवतनी भी थे। डिप्टी साहब ने साफ़ कह दिया अगर निशिकान्त को स्टोरकीपर बनाकर भेजा तो मैं एक महीने में नालायक करके निकलवा दूंगा। इसपर स्टोरकीपर ने कहा–'जी, निशिकान्त आसानी से नालायक होने वाला नहीं है। जूनियर होकर भी उलझे हुए केसों पर वही टिप्पणी करता है।'

डिप्टी साहब तब मुस्कराये, बोले— 'चोरी के इलज़ाम में डिसमिस करा देना तो मामूली बात है।'

'सच' ऐसा कहा उन्होंने?' निशिकान्त ने अचरज से पूछा।

'हाँ।' — मित्र विजय-गर्व से भरकर बोले।

'बड़े दुष्ट हैं।'

'देख लो। तुम इनकी प्रशंसा करते नहीं थकते और वे हैं कि तुम्हारी जड़ काटने के लिये कटिबद्ध हैं।'

निशिकान्त मुस्कराया। 'जड़ कौन किसकी काट सका है? जो ऐसा सोचते हैं, मूर्ख हैं, परन्तु......।'

साथी बीच ही में बोल उठे : 'मूर्ख तुम हो, निशिकान्त । तुम्हें समय रहते चिन्ता करनी चाहिये । मेरा काम तुम्हें चेतावनी देना था । और मुझसे तुम्हारी कोई सहायता हो सकती हो तो मैं तैयार हूँ ।'

'आपकी कृपा है, मुझे आप पर भरोसा है ।'

साथी मुस्कराकर चले गये और मस्तिष्क के बवंडर को रोकने में असमर्थ निशिकान्त फिर चिट्ठियों पर झुका । बीच में कई बार बड़े बाबूने बुलाया, साहब ने सलाम भेजा, साथी केस पूछने आये और गये । दफ्तर का काम तेज़ी से होता रहा और उसकी विचारधारा भी तेज़ी से बहती रही कि सन्ध्या होते-होते उस्मान अजीब अदा से मुस्कराता हुआ आया । बोला — ' अरे भई निशिकान्त ' सुना वह केस फिर आ गया है ।'

निशिकान्त भी मुस्कराया । 'कौनसा केस ?'

'वही मेरा और आपवाला ।'

'तब ।'

'क्या लिखा है ?'

'सरविस-बुकें माँगी हैं ।'

'यार, तुम्हारी जीत है ।'

'कैसे ?'

'पर्सनल असिस्टैंट सिख है ।'

सहसा निशिकान्त उठ खड़ा हुआ और पूर्ण विश्वास के साथ उसने उस्मान को देखते हुए कहा — ' मैं मानता हूँ, तुम मेरा विश्वास नहीं करोगे । इसमें तुम्हारा दोष नहीं है । परिस्थिति ही ऐसी है, परन्तु मैं दिल की बात कहता हूँ । मैं न्याय से ऊँचे पद का हक़दार हूँ तो ठीक है अन्यथा मैं सपने में भी तुम्हें गिराने की बात नहीं सोच सकता । तुम्हें क्या, किसी को भी नहीं । मैंने आज तक साहब से इस बात का जिक्र तक नहीं किया, जब कि तुम जानते हो उन लोगों से मेरे सम्बन्ध कितने गहरे और मीठे हैं । मै अपने लिये किसी के आगे हाथ फैलाने से भूखा मर जाना कहीं अच्छा

समझता हूँ । इन्सान इन्सान के आगे हाथ फैलाये, इससे गन्दी बात और हो ही क्या सकती है ?'

निशिकान्त का स्वर इतना स्पष्ट और बेलाग था कि कोई भी निष्पक्ष आदमी उसकी ईमानदारी से इनकार नहीं कर सकता था । उस्मान मुस्कराया, उसकी आँखें चमक उठीं । क्षण भर के लिये विश्वास ने मानों अविश्वास को पराजित कर दिया हो । उसने कहा — 'सच, निशिकान्त ! मैं भी यही चाहता हूँ ।'

और फिर सहसा बात को आगे बढ़ाये बिना वह चला गया । निशिकान्त का मन भर आया था । क्षण भर उसने जाते हुए उस्मान को देखा, फिर जल्दी-जल्दी चिट्ठियाँ छाँटने लगा । ६ बजने वाले थे और उसका मन काम करने को नहीं कर रहा था । उसने दफ़्तरी को पुकारा — 'मैं जा रहा हूं । कमरा बन्द कर दो ।'

और वह लौट चला । चलते-चलते विचारों का एक तुमुल प्रवाह मस्तिष्क में भर आया । कुछ पुरानी बातें नयी होकर सामने आ गयीं । उस दिन वह पत्नी के साथ नहर के किनारे घूम रहा था । वातावरण में मस्ती थी; उसके मन में, उनकी बातों में मस्ती थी । प्रेम और मोहब्बत की बातें करते-करते वे भविष्य के सुनहरे सपने देखनेलगे थे, कि सहसा निशिकान्त का मन विषाद से भर उठा । उसने दर्द भरे स्वर में कहा — 'रजनी, कैसी अचरज की बात है ! मुझे नौकरी करते हुए बारह वर्ष बीत गये, परन्तु मैंने एक क्षण के लिए भी इसे पसन्द नहीं किया । मैं इसे अपने जीवन का श्राप समझता हूं ! प्रतिक्षण यहाँ मनुष्य मनुष्य का गला घोंटता रहता है । प्रति क्षण दासता की कड़ियाँ कसती रहती हैं । प्रतिक्षण हिन्दू-मुस्लमान, ऊँच-नीच, जाट-बनियाँ, सिख-असिख पंजाबी-नॉनपंजाबी, ब्राह्मण-बनिया के रूप में मनुष्य की नीचता, तृष्णा और घृणा फूलती-फलती रहती है ।'

रजनी ने पति की ग्लानिको अनुभव किया, बोली, 'ऐसी बात है तो नौकरी क्यों नहीं छोड़ देते ।'

निशिकान्त मुस्कराया । 'मैं भी यही पूछा करता हूं, मैं नौकरी छोड़ क्यों नहीं देता । परन्तु, रजनी , पेट की पुकार रास्ते का रोड़ा बन जाती है । जो हितैषी हैं वे

पूछ बैठते हैं — करोगे क्या ? देखती आंखों आज की दुनिया में भरी-पूरी रोज़ी को लात मारना मूर्खता की सीमा है।'

'लेकिन,' रजनी बोली, 'आपको भी पेट की चिन्ता है ! आप तो लिखते हैं।'

'लिखता हूं, पर लिखने से पेट नहीं भरता। पूँजीपतियों के देश में लेखक की दशा मज़दूर से भी बदतर है।'

'अपना कुछ काम करलो।'

'उसके लिये पूँजी की आवश्यकता है।'

रजनी ने क्षण भर सोचा, बोली, 'मेरे पास जो गहने हैं उन्हें बेच दो। युद्ध के कारण सोना तेज है। जब कभी सस्ता होगा, बन जावेंगे। और न भी बने तो क्या उनके बिना जिया नहीं जाता !'

तर्क इसी तरह आगे बढ़ता गया और जैसा कि तर्क का गुण है, बिना किसी निर्णय के समाप्त हो गया, और निशिकान्त को फिर अम्मा की बातें याद आ गयीं। वह सदा हवा में बोलती है — छोड़ दे नौकरी। अपने घर चल। भूखा कौन मरता है। भगवान सबको देते हैं।

निशिकान्त तर्क करता — नहीं अम्मा ! भगवान उन्हीं को देते हैं जो मेहनत करते हैं।

—तो तू क्या लुंजा है या लंगड़ा ? इतना पढ़ा है। यहां नहीं मन लगता तो स्कूल में नौकरी कर ले।

निशिकान्त हँस कर रह जाता। और यही अम्मा दूसरे दिन कहती — ना, बेटा ! नौकरी नहीं छोड़ा करते। दुनिया भूखी मर रही है। लोग नौकरी के लिये तरसते फिरते हैं और तू लगी-लगायी छोड़ना चाहता है ! इस नौकरी के कारण ही तेरी और तेरे कुटुम्ब की इज्ज़त है। दुनिया कहती है—लायक़ बेटा है, कुटुम्ब को सँभाल रखा है, नहीं तो... नहीं तो...

अम्मा को पुरानी बातें याद आ जाती हैं। आँखों से टप-टप आंसू टपकने लगते हैं। निशिकान्त न मुस्कराता है न रोता, केवल शून्य में खोया-खोया देखने लगता

है। भावुकता उसमें भी है। माँ की बात चुभती है। पर वह जानता है कि जो कुछ उसके हृदय में है वह न माँ समझती है न पत्नी। उसका हृदय देश की परतन्त्रता पर कलकता है। वह सोचता है — मेरा देश, करोड़ों नर-नारियों का देश, पराजित क्यों है ? क्या हम विदेशी पदक्रान्त करने वालों का साथ छोड़ दें तो उनकी मशीन ठप्प न हो जावेगी ? क्या वे सदा शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं ? और क्या दो-चार हज़ार के मर जाने से कोई देश मर सकता है ? क्या जन-शक्ति से बढ़कर कोई शक्ति है ?.. ......प्रश्न तीखे हैं। उसके अपने हृदय को छेद देते हैं। वह बहुत सोचता है। आखिर क्यों......? उत्तर मिलता है — क्योंकि जनता ने अभी अपने आपको समझा नहीं। वह आज़ादी और गुलामी का भेद नहीं जानती। जिस दिन जान जायगी उस दिन देखेगी, हमने अपने हाथों में आप ही हथकड़ी डाल रखी है और कि हम स्वयं ही उन्हें उतार कर फेंक सकते हैं। यही बात उसने एक दिन बड़े मनोयोग से रजनी को समझायी। रजनी ! जिस दिन तुम समझोगी कि तुम गुलाम हो, उसी दिन तुम्हें मेरे मन के द्वन्द्वका पता लग जावेगा। उस दिन तुम स्वयं बन्धन खोलने को आतुर हो उठोगी। बात केवल समझने की है। देश गुलाम है लेकिन हम आपस में लड़ते हैं पद के लिये, लिप्सा के लिये। सोचते नहीं, आज़ादी के सामने सब गौण है।

रजनी बोली, 'आप ठीक कहते हैं, परन्तु आज़ादी के लिये जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनसे जनता डरती है। भूख की तो कल्पना भी कँपा देती है।'

निशिकान्त हँसा — 'भूख ! रजनी, संसार में भोजन की कमी कभी थी न कभी होगी। बात केवल इतनी है कि वह कुछ थोड़े से हाथों में चला गया है। उसे छीन लेना हमारा काम है।'

'लेकिन कैसे ?'

'उसके लिये जो समझदार हैं उन्हें रास्ता दिखाना पड़ेगा।'

और यही सोचकर निशिकान्त सहसा हर्ष से भर उठा। ठीक तो है, मै इतना समझता हूँ, मुझे रास्ता दिखाना चाहिये। मेरा और उस्मान का झगड़ा है। मै आगे

बढ़ गया तो क्या होगा ? वेतन बढ़ जावेगा, परन्तु साथ ही गुलामी की जंजीरें भी दृढ़ होगी । मैं गुलामी से घृणा करता हूँ। मुझे कह देना चाहिये मैं उस्मान को सीनियर स्वीकार करता हूँ......परन्तु मैं कौन ? ... रास्ते में सरकार है, मेरे साथी हैं......। साथी कहेंगे — कायर ! कृतघ्न ! हिन्दू जाति के माथे पर कलंक का टीका लगाना चाहता है । शेर जाल में फँसा है, उसे मुक्त करना चाहता है। शेर , शेर हैं । मुक्त होने पर तुम्हें न भी खाये, पर हम तो हैं ...। तो ...? उसका मस्तिष्क चकराने लगा । उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था । उसका कोई मित्र नहीं था । जो थे वे हिन्दू थे, सम्बन्धी थे, या विरोधी थे । सभी जाति-द्वेश, वर्ग-द्वेष और मानवता के प्रति घृणा से भरे हुए थे, वे सब कायर और कमीने थे......

धीरे-धीरे निशिकान्त पर भी यही कायरता छाने लगी । मैं क्यों पैदा हुआ, मेरा क्या मूल्य है ? मैं क्या कर सकता हूँ ? मेरे पास न शक्ति है, न सम्पन्नता, न सौन्दर्य, न परिवारिक महानता । मुझ में प्रतिभा भी नहीं है जो महान् लेखक ही बन सकूँ। तो मैं किस योग्य हूँ ?.........

किसीने पुकारा — 'बाबू निशिकान्त ।'

चौंककर देखा, पोस्टमैन था — 'बाबू निशिकान्त, आपकी चिठ्ठी है ।'

'लाइये ।'

'दो अखबार और एक लिफाफा ।'

लिफ़ाफ़ा रजनी का था । वह चिर-परिचित अक्षर ! खोलकर पढ़ने लगा । सदा की भाँति उसने लिखा था—

प्रियतम प्रणेश्वर !

आपका प्रेम-पत्र आया। पढ़कर न जाने क्यों मन भर आया । आप इतने दुखी क्यों रहते हैं ! आप जैसे योग्य आदमी भी तड़फते रहे तो कैसे होगा ? बुद्धि आपको मिली है, आप लेखनी के स्वामी हैं । क्या कोई भी गुणग्राहक नहीं है ? और फिर न भी हो। आत्मविश्वास बहुत बड़ी चीज़ है । .... नौकरी में मन नहीं लगता तो सच कहती हूँ छोड़ दीजिये । आप भूखे

नहीं रह सकते, फिर मैं भी तो हूँ। पेट भरने जितना तो मैं भी कमा सकती हूँ। और सबसे अच्छा तो यह है कि हम दोनों अपना एक स्कूल चलावें। अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ विद्यार्थियों को आत्मज्ञान भी आप दे सकेंगे। क्यों ठीक रहेगा न ?

पर कुछ भी हो दुखी न रहिये। उससे क्या समस्या हल होगी ? मुनिया प्रसन्न है। सदा बागीचे में फूल तोड़ती रहती है। आपको नमस्ते लिखाती है।.........

आपकी ही

रजनी

निशिकान्त ने पत्र पढ़ लिया। मानो पूर्व में प्रकाश की किरणें फूट पड़ी हों। क्षण भर में मस्तिष्क की अशान्ति दूर हो गयी। शब्द सीधे थे, पर उनके पीछे एक मार्ग था, मानो कृष्ण ने अर्जुन को चेतावनी दी थी—भविष्य उन्हीं का है जो निःशंक हैं ; मानो रजनी ने निशिकान्त को बताया था : दुविधा मौत है। भविष्य का निर्माण हमारे हाथ में है। भविष्य हमारा निर्माण नहीं करता।

हाँ, निशिकान्त ने कहा, ठीक है : मैं भविष्य का निर्माता हूँ। भाग्य मेरे हाथ में है। मैं अब इस चक्की में नहीं पिसूँगा। मैं त्याग पत्र दूंगा ... त्यागपत्र...! हाँ, मैं त्यागपत्र दूंगा। मुझे मुक्ति मिलेगी। मैं खुलकर उन कारणों से लड़ सकूँगा जिनके कारण ये प्राणघातक परिस्थितियाँ पैदा हो गयी हैं। मैं जड़पर प्रहार करूँगा और जड़ है गुलामी चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक या सांस्कृतिक। गुलामी गुलामी है। मैं उसे स्वीकार नहीं करूंगा।

और सचमुच अगले दिन सबेरे जाते ही उसने त्यागपत्र दे दिया। दफ्तर में जैसे विस्फोट हुआ हो। स्तीफ़ा ! आज की दुनियां में स्तीफ़ा ! सरकारी नौकरी से स्तीफ़ा ! पन्द्रह वर्ष की नौकरी से स्तीफ़ा !

टाइपिस्ट ने नेत्र विस्फारित कर कहा—'बाबू निशिकान्त ने स्तीफ़ा दे दिया ! एकाउन्टैन्ट चौंका — 'स्तीफ़ा !'

सीनियर बाबूने पहले तो अचरज से देखा, फिर गम्भीरता से कहा— 'तुमने गलत सुना है। कोई और बात होगी।'

'नहीं, नहीं' — टाइपिस्ट ने कहा — 'मैंने स्वयं देखा है, बड़े बाबू उन्हें समझा रहे थे ।'

'तब क्या कहा उसने ?'

'यही कि मैंने स्तीफ़ा दिया है, मैं उसे वापिस नहीं लूँगा ।'

'नहीं लूंगा ?' —एकाउन्टैंट ने व्यंग से कहा — ' रात बड़े बाबू से लड़ा था, वही जोश है । साहब के सामने जाते ही दूर हो जाएगा ।'

'जी हाँ, आप ठीक कहते हैं, । माना, बड़े बाबू बत्तमीज़ हैं, पर इसका क्या यह मतलब कि नौकरी छोड़ दी जावे ? यह तो बुज़दिली है ।'

'एकदम बुज़दिली ।'

'अजी साहब ! मैंने भी स्तीफ़ा दिया था । स्टन्ट है, केवल स्टन्ट । देख लेना शाम तक वापिस ले लेंगे ।'

कि तभी आगये बाबू हरिचन्द । अचरज से सब को देखा, बोले — 'क्या बात है ?'

'आपने नहीं सुना !'

'नहीं ।'

'आपके साथी बाबू निशिकान्त ने स्तीफ़ा दे दिया ।'

'स्तीफ़ा दे दिया...?'

'जी, दे दिया ।'

'तो स्तीफ़ा दे दिया उसने.........?'

....

मैं जानता था वह स्तीफ़ा देगा । सच तो यह है, उसे स्तीफ़ा देना ही चाहिये था ।

'क्यों ?' — कई बाबू एक साथ अचरज से बोले !

'क्योंकि वह शेर है ।......'

फिर सहसा रुक धीरे-धीरे छड़ी को घुमाकर बोले—'एक दिन मैं भी शेर बनने

चला था, परन्तु मेरा भाग्य ! भेड़ बन कर रह गया । हम सभी भेड़ हैं । हम जानते है कि हम गुलाम हैं परन्तु रोज कुत्तों की तरह लड़ते हैं और मालिक के अत्याचारों को न्यायोचित ठहराते हैं ! हम अपने घर में बिराने हैं । हम अपनी भाषा नहीं बोल सकते, हम अपने वस्त्र नहीं पहन सकते, हम अपनी बात नहीं कह सकते । कहें भी कैसे ? ऊँटने सारा तम्बू घेर लिया है । उससे लड़ेंगे तो तम्बू फट जायगा ।'

भावुकता हँसी में पलट गयी : कहते रहे, 'तम्बू फट जायगा ? भले ही हमारा देश हमसे छिन जावे, परन्तु हम हमारी बीवियाँ, हमारे बच्चे जीते रहें ! ठीक है, भेड़ की दृष्टि आँखों से आगे नहीं बढ़ती । जिसकी बढ़ जाती है वह शेर है । इसलिये निशिकान्त शेर है ।'

और फिर बाबू हरिचन्द शीघ्रता से निशिकान्त के पास पहुँचे और बोले : 'तो तुमने व्यूह तोड़ डाला । शाबाश, तुमने दिखा दिया कि भेड़ें भी शेर बन सकती हैं । मुझे बड़ी खुशी है । तुम अकेले हो पर रास्ता दिखानेवाला सदा एक होता है और फिर हम लोगों के शरीर भले तुम्हारे साथ न हों, मन से हम सब तुम्हारी क़ामयाबी के लिये दुआ करेंगे ।'

निशिकान्त इस प्रशंसा के लिये तैयार नहीं था । वह सहसा विचलित हो उठा न सोच सका, न बोल सका, केवल अपलक सजल नेत्रों से बाबू हरिचन्द को इस प्रकार देखने लगा मानो उनके मुख पर उसके भविष्य में होने वाला अरुणोदय स्पष्ट झलक उठा हो ।

———